अनंत प्रकाश की ओर एक पुकार

आत्मिक प्रेम और चर्चा का अमृत संकलन

प्रेम रसायन

प्रवचनकर्ता

श्री राजन स्वामी जी

श्री प्राणनाथ जी वाणी
॥ प्रेम खोल देवे सब द्वार ॥

श्री प्राणनाथ जी वाणी सेवा परिवार

धाम धनी जी की मेहर से प्यारे सतगुरू श्री राजन स्वामी जी के अनुपम चर्चा से उद्धृत **'श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ के 19वें वार्षिकोत्सव 2025 (SPJIN)'** यूट्यूब चैनल पर हुई 'प्रेम रसायन' की अद्भभुत चर्चा को सुनकर हमारे प्यारे सुंदरसाथ जी द्वारा लेखन की अति सुंदर प्रेमपूर्ण सेवा की गयी है।

प्रेम रसायन चर्चा – श्री राजन स्वामी जी (SPJIN)
लेखन व प्रूफ रीडिंग की सेवा - श्री प्राणनाथ जी वाणी परिवार
सभी निस्वार्थ, अथक व निरंतर सेवाभावी सुंदरसाथ जी के चरणों में कोटि-
कोटि प्रेम प्रणाम जी।

कॉपीराइट

कॉपीराइट © 2025 श्री प्राणनाथ जी वाणी
सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पुस्तक के किसी भी अंश की छपाई, पुनरुत्पादन या किसी अन्य रूप में उपयोग बिना अनुमति के निषिद्ध है।

संक्षिप्त परिचय पढ़ने और समय
निकालने के लिए धन्यवाद।
हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप हमें अपनी ईमानदार प्रतिक्रिया दें।

आपकी चरण-रज
श्री प्राणनाथ जी वाणी परिवार

अनुक्रमणिका

श्री रास 04

सखी तमे हमारा जीवन छो

श्री प्रकाश 17

इतहीं बैठे घर जागे धाम

श्री कलश 31

जो पिऊ सों बैठी मुख फेर

श्री सनंध 42

बिछरो तेरो वल्लभा, सो क्यों सहे सुहागिन

श्री खिलवत 59

इत मैं बीच काहू में नहीं

श्री परिक्रमा 75

प्रेम बसे पिया के चित

श्री सागर 86

तो प्रेम रसायन पीजिए

श्री सिनगार 99

तब निज सूरत रूह की, उठ बैठी परवान

श्री रास
सखी तमे हमारा जीवन छो।
श्री प्राणनाथ जी वाणी
॥ प्रेम ख़ोल देवे सब द्वार ॥

“ सखी तमे हमारा जीवन छो ”

प्राणधार सुंदरसाथ जी, प्राणेश्वर अक्षरातीत ने रास ग्रन्थ के माध्यम से हमें ऐसा संदेश दिया है जो इस जागनी ब्रह्मांड के निर्णय में एक बहुत अहम भूमिका निभाता है। प्रायः हम सुन्दरसाथ भी, रास की जो रामतें हैं, उनको जब बाह्य जगत में क्रियान्वित किया जाता है, तो हम भी भ्रमित होते हैं और उसी को रास समझ बैठते हैं। वो तो एक क्रिया है, रास का रहस्य रास की वाणी में दर्शाया गया है। एक चौपाई आती है -

वन गेहेवर अमें जोइयूं, आगल तो दीसे अंधार।
हवे ते किहां अमे जोइए, मूने सुध नहीं अंग सार।।33।।
रास प्र.32

यह प्रसंग अंतर्ध्यान की लीला का है, जब श्री कृष्ण जी का तन ओझल हो जाता है, क्योंकि राज जी ने उस तन से जैसे ही अपना आवेश हटाया, वो तन दिखना नहीं था। तन तो वहीं था लेकिन बिना आवेश के ब्रह्मात्माओं को वो तन नज़र नहीं आ सकता था। सखियाँ पूरे वृंदावन में खोज रही हैं कि हमारे कृष्ण जी कहाँ गए हैं। जागनी के ब्रह्मांड में भी हमारे साथ यही अवस्था है, हम वाणी पढ़ते हैं, राज जी हमको दिखाई नहीं देते, चितवनी भी करते हैं तो भी दिखाई नहीं देते, क्योंकि हमारे ह्रदय में संसार बसता है। उस संसार को हटाए बिना वो प्रीतम, जो हमारे दिलों में निरन्तर वास करता है, कैसे दिखे? पहले तो रास ऐसा शब्द है जिसमें बड़े बड़े विद्वान योगी महात्मा भ्रमित हो जाते हैं। विवेकानंद जैसे योगी तपस्वी व्यक्ति भी रास के बारे में भ्रमित हो जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं है। उन्होंने जो रास के बारे में कहा है वो काफ़ी नकारात्मक विचार ही कहे जा सकते हैं, उनका दोष नहीं था, क्योंकि जो इस त्रिगुणात्मक जगत में रहता है, त्रिगुणातीत अवस्था के बारे में कुछ जान नहीं सकता। और योग के मार्ग पर अवलंबन करने वाले को तो पहली शिक्षा दी जाती है, बुद्ध जी ने भी अपने शिष्यों को कहा था कि स्त्री की आँखों की तरफ़ मत देखो।
उनका जो कथन है वो अपने युग के अनुकूल सही था, क्योंकि हर कोई त्रिगुणातीत अवस्था में पहुँच नहीं सकता। और उनके भिक्षुओं ने जब यह भूल करनी शुरू की तो बौद्ध धर्म का पतन हो गया। जो सन्यास मार्ग में चलता है, वो नृत्य से दूर रहता है, जब रास क्रीड़ा की जाती है तो नृत्य होता है।
रास की व्याख्या कौन कर सकता है, शुकदेव जी, जिसको स्त्री और पुरूष के भेद का पता न हो वही केवल रास के बारे में जान सकता है, सामान्य प्राणी तो अपने स्तर से सोचेगा। जैसे एक माँ को पता है कि अपने दो वर्ष के शिशु का माथा चूमने पर बच्चे को कितना आनंद होगा या माँ को कितना आनंद होगा, यह माँ और बच्चे, भुक्तभोगी जानते हैं तीसरा नहीं जान सकता। माँ अपने

बच्चे का माथा चूमती है तो उसके लिए भी चुम्बन शब्द प्रयोग होगा, उससे जो आनंद होगा उससे अरबों गुना खरबों गुना आनंद त्रिगुणातीत लीला में होता है। लेकिन वही प्रक्रिया 25 वर्ष की अवस्था में, कोई अपरिचित स्त्री पुरुष करते हैं तो उसको विकार माना जाता है। माँ वही चुम्बन करती है तो पवित्र है, भाई बहन गले मिलते हैं तो पवित्र है, पति पत्नी मिलते हैं तो उसको विकार की दृष्टि से देखा जाता है, चौराहे पर वो आलिंगनबद्ध नहीं हो सकते। माँ बेटा आलिंगनबद्ध हो सकते हैं, यह भावना का स्तर है, त्रिगुणातीत अवस्था में जो क्रिया की जाती है, उसको सामान्य व्यक्ति सामान्य जगत में समझ ही नहीं सकता।

भरतपुर के राजा से उनकी गहरी मित्रता थी, राजा ने एक नृत्य गान का आयोजन किया था। विवेकानंद जी ने देखा कि गायन के लिए गणिका आ रही है, तो उठ कर के चलने लगे। राजा ने प्रार्थना की कि स्वामी जी मेरे निवेदन से आप थोड़ा सा सुन लीजिए। जब उसने भजन गाना शुरू किया, विवेकानंद सुनने लगे, जब उसने भजन गाया प्रभु जी मेरे अवगुण चित न धरो। सूरदास के इस पद में कहा गया है कि एक लोहा है कसाई के यहाँ, तलवार बन कर के पशुओं की गर्दन काटता है और एक लोहा है जब मंदिर में मूर्ति बना दिया जाता है तो पूजा जाता है। दृष्टांत यही था कि आप तो सन्यासी हैं, आपके अंदर जो जीव है, उसने सन्यासी का तन धारण किया है और मेरे अंदर जो जीव है, मुझे गणिका का अभिनय करने के लिए रख दिया गया है। मेरे शरीर को ऐसा बना दिया गया है कि मुझे नृत्य करने के लिए कहा जाता है तो इसमें मेरा क्या दोष है? विवेकानंद वेदान्त के विद्वान थे, वो जानते थे कि चेतना तो सबकी एक ही है। विवेकानंद की आँखों से आँसू बहने लगे और आकर के उस गणिका को माता कहकर उसके चरणों में प्रणाम किया, उसी दृष्टि से यदि उन्होंने रास को समझा होता कि रास क्या है?

मैं आपको समझाता हूँ, तैत्तिरीय उपनिषद् में **रसो वै सः** की बात कही गई है, रस की क्रीड़ा रास है, प्रश्न है कि रस क्या है? देखिए कठोपनिषद् में इसकी व्याख्या की गई है, श्रेयानन्द और प्रेयानन्द। प्रेयानन्द किसको कहते हैं, जो प्रकृति का आनंद है वो प्रेयानन्द है, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, सारा संसार इसी में फँसा हुआ है। अमेरिका में जाइए विदेशों में जाइए, उनका भोजन क्या है, गौमांस और शराब, उसके बिना रह नहीं सकते, आप उनको रोटी सब्जी खिलाइए तो उनको अच्छा नहीं लगेगा। उनका हृदय किसमें सुख का अनुभव करता है, मांस मिल जाये, शराब मिल जाये, भारत में भी ऐसे बहुतेरे लोग हैं। एक वो रस है जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, सबसे परे है, त्रिगुणातीत स्पर्श है। ब्रह्मानंद कैसे होता है, आप वेदान्त की तरफ़ जाएँगे, उपनिषदों की तरफ़ जाएँगे, तो निराकार मंडल में जो मुक्ति प्राप्त योगी होते हैं, संकल्प मात्र से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का सुख लेते हैं।

आप परमधाम की लीला का वर्णन करेंगे तो क्या होगा, राज जी की क्रीड़ा के साथ कैसा आनंद है, राज जी के साथ बातें करने का क्या आनंद है, वहाँ की कई तरह की मेवा मिठाइयों का वर्णन

पढ़ते हैं, सारे सुखों का केंद्र कहाँ समापन होता है, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध में, इस संसार के धरातल पर। रस की अनुभूति ही आनंद को पैदा करती है और रास किसको कहेंगे ब्रह्मानन्द की क्रीड़ा ही रास है, शरीर का स्पंदन नहीं। जैसे कलाकार होते हैं, वृंदावन में जायेंगे तो रास की बहुत मंडलियाँ हैं, उनको प्रशिक्षण दिया जाता है ऐसे नाचो, वो रात रात भर नाचते हैं और कहते हैं कि हम रास कर रहे हैं। वो बेचारे रास को क्या जानें, रास को तो त्रिदेव नहीं जान सके, शुकदेव भी उसका वर्णन करने में असमर्थ हो गए। विवेकानंद जैसे योगी नहीं जान सके, शुकदेव जिन्हें पता नहीं, स्त्री किसको कहते हैं, पुरुष किसको कहते हैं, वो भी राज जी के जोश के बिना रास का वर्णन नहीं कर सकते तो एक संसारी व्यक्ति जो विषय वासनाओं की क्रीड़ा में फँसा हुआ है, वो तो वैसा ही अर्थ लेगा जैसा कि समाज में प्रचलित है। जहाँ आलिंगन शब्द देखेगा तो इस स्थूल पिंड का स्थूल पिंड से आलिंगन अर्थ ले लेगा, जहाँ स्थूलता है। यह तो त्रिगुणात्मक शरीर है, शरीर से शरीर का स्पर्श होता है तो विकार हो सकता है, एक बुद्धिवादी की दृष्टि में, लेकिन जैसे मैंने कहा छह माह का बच्चा माँ के हृदय से चिपका रहता है, न बच्चे में विकार है, न माँ में विकार है, यदि युवा भाई बहन हों, वो भी आलिंगनबद्ध होते हैं तो उनमें भी कोई विकार नहीं होता क्योंकि उनकी दृष्टि चेतना को देख रही होती है। मैं वही कहना चाह रहा हूँ कि आज हम छठे दिन की लीला में, जागनी के ब्रह्मांड में हैं, अंतर्धान लीला तो नाटक के अंदर है, थोड़ा सा वियोग का रस दिखाया जा रहा है। योगमाया के ब्रह्मांड में कैसी भूमिका है, अधिक सुख है, पल भर का वियोग है। काल माया के ब्रह्मांड में वियोग ज़्यादा है और संयोग थोड़ा है। और जो रस की अनुभूति है, मैं आपको संक्षेप में समझा देता हूँ जिससे हर कोई समझ जाएगा कि रास का वास्तविक अर्थ क्या होता है।
देखिए, जैसे आपके सामने स्वादिष्ट कोई भोज्य पदार्थ रख दिया जाये, बहुत स्वादिष्ट कोई फल हो, गुलाबजामुन हो या कोई भी अच्छी दुनिया की मिठाई हो सकती है। आप देख रहे हैं, आपसे पूछा जाये कि क्या रस आ रहा है, आप क्या कहेंगे, जब तक खाऊँगा नहीं रस कैसे आयेगा। जब आप उसको जिह्वा पर रखते हैं, उसमें जो निहित रस प्रवाहित होता है, आपका मस्तिष्क आपके मन को उसकी अनुभूति को पहुँचाता है, तो आप अपनी भाषा में कहते हैं, कि हाँ! आनंद आ गया।
प्रश्न यह है कि बृज में भी 11 वर्ष 52 दिन तक अक्षरातीत का आवेश गोपियों के साथ क्रीड़ा करता है, श्री कृष्ण जी के तन में, वहाँ रास क्यों नहीं होती है? योगमाया के ब्रह्मांड में रास की क्रीड़ा हो रही है, श्री कृष्ण जी का तन अदृश्य हो जाता है तो सखियाँ कह रही हैं कि हमने घने वन में खोज डाला।
वन गेहेवर अमें जोइयूं, आगल तो दीसे अंधार। चारों तरफ़ घना अंधकार है हम कहाँ जाएँ? यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रसंग है, जागनी की लीला में भी, हमारे जीवन में एक ऐसी दुविधा है, हम रास से क़यामतनामा तक की वाणी पढ़ जाते हैं, लेकिन जो वास्तविक रास है, जो हमें श्रेयानन्द में अनुभूति होनी चाहिए वो नहीं हो पाती है। मुख्य आशय क्या है, रास पहले भी थी, आज भी और

भविष्य में भी होती रहेगी लेकिन यह केवल अंतर्दृष्टि को खोलने की बात है। बृज में राज जी के साथ सखियाँ हैं तो भी रास नहीं हो सकती, योगमाया में जाते हैं तो वहाँ त्रिगुणातीत अवस्था मिल जाती है, तब सखियों को पहचान होती है कि यह हमारे प्रीतम हैं, पहचान के बाद तब रास प्रारम्भ होती है।

जब सखियों से राज जी कहते हैं कि सखियो! तुम्हारे पति तुम्हारी बाट देख रहे होंगे, बच्चे तुम्हारे बिना रो रहे होंगे, तुम घर को छोड़ कर इस भयानक रात्रि में कैसे चली आई हो। सखियाँ कहती हैं हमारी आत्मा के प्रीतम तो आप हैं, हम आप को छोड़ कर कहीं नहीं जा सकती, तो परिणाम क्या होता है, उसके पश्चात रास प्रारंभ होती है। बृज में साथ रहने पर भी प्रेम के आनंद की उस अनुभूति को कोई पहुँच नहीं पाया जो रास के अंदर दिया गया। यह क्या संकेत कर रहा है? जागनी के ब्रह्मांड में राज जी ने बता दिया कि हक नजीक सेहरग से, आड़ो पट ना द्वार। जो बृज में सामने कृष्ण जी के तन में लीला कर रहा था, लेकिन सबने क्या समझा कि यह तो नंद का बेटा है, हमें क्या लेना देना, हमारे पति हमें स्वीकृति नहीं देते, घर जाएँगे तो सासुड़ी दे मोहे गार। हम सासु का, ससुर का, देवर और जेठ का अपमान नहीं कर सकते, हम कुलवधू हैं। जब रास में जाती हैं, बुद्धि जागृत अवस्था की मिलती है तो क्या कहती हैं कि सास ससुर या घर से हमारा कोई रिश्ता नहीं है, हमारे तो प्रीतम आप हैं। बृज में राज जी कहते हैं कि चलो सखियो रास करते हैं, सभी मना कर देती है। रास में कहते हैं कि जाओ, तो कहती हैं कि हम तो नहीं जा सकती। लेकिन एक भूल होती है क्योंकि रास में **कछू नींद कछू जाग्रत भए, जोगमाया के सिनगार जो कहे।** पूरी जागृत नहीं है तो वन में खोज रही है कहाँ है कृष्ण, कहाँ है कृष्ण। राज जी बता रहे हैं **हक नजीक सेहरग से,** मैं तुम्हारी प्राण की नली से भी नजदीक हूँ। यह जागनी ब्रह्मांड में पता चल रहा है, बृज में भी पता नहीं था, और सच बताऊँ परमधाम में भी पता नहीं था। परमधाम में सबको पता चल जाता, श्यामा जी को पता चल जाता कि मेरे अंदर अक्षरातीत हैं तो इश्क़ रब्द होता ही नहीं। परमधाम में तो राज जी के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, **जिमी जात भी रुह की, रुह जात आसमान।** धरती आकाश, सब कुछ वहाँ आत्मा का स्वरूप है। लेकिन जो साक्षात् श्यामा जी हैं, अक्षरातीत की हृदय स्वरूपा, वो भी नहीं जानती हैं कि मेरा रोम रोम तो अक्षरातीत का ही है और यही निर्णय देने के लिए जागनी का ब्रह्माण्ड बनाया गया, जिसमें परमधाम की वाणी आपको जगा रही है।

इस स्तर तक पहुँचने के लिए रास को आप गंभीरता से देखें, राज जी की कृपा की छत्रछाया में तो कहा है, **पचवीस पख छे आपणा, तेमां झीलजे रात ने दिन।** दिन रात झीलिए। झीलने का तात्पर्य क्या है, स्नान करना। जागनी के ब्रह्मांड में आपको जागनी की रास करनी है। बृज में क्या था, **पूरी नींद को जो सुपन, कालमाया नाम धराया तिन।** बृज का ब्रह्मांड पूरी निद्रा का, अक्षर की आत्मा को पता नहीं कि मैं अक्षर हूँ, रास में अक्षर को जोश खींचने के बाद पता चलता है, **कौन बन कौन सखियां कौन हम, यों चौंक के फिरी आतम।** तब अक्षर की आत्मा को पता चलता है कि मैं

तो वो ही अक्षर हूँ जिसने अक्षरातीत से परमधाम की प्रेममयी लीला को देखने का आग्रह किया था, लेकिन सखियों को अभी भी घर का पता नहीं है। जागनी के ब्रह्मांड में आपको क्या बता दिया गया है कि सारा परमधाम आपकी आत्मा के हृदय में बसता है।
श्रृंगार ग्रन्थ का दूसरा प्रकरण देखिए क्या बताता है, इस प्रकरण के पूर्व के प्रकरण की अंतिम चौपाई में क्या कहा है और इस प्रकरण की पहली चौपाई में क्या कहा है –

अब हुकमें द्वारा खोलिया, लिया अपने हाथ हुकम।
दिल मोमिन के आए के, अर्स कर बैठे खसम।।1।।
सिनगार प्र.2

आपने अभी सागर ग्रंथ का किरन्तन भी सुना, **अर्स तुम्हारा मेरा दिल है,** हमारा दिल ही धनी का धाम है। ऊपर तले अर्स ना कह्या, हम परमधाम को बुद्धि से चर्चनी में पढ़ते हैं, क्षर अक्षर के पार हैं, पिया अक्षरातीत आधार, बिल्कुल सही बात है, क्षर से परे हैं, अक्षर से परे हैं, लेकिन वो परमधाम कहाँ बसता है, एक झलक थोड़ी सी देखने को मिलेगी, ऋषियों की वाणी में।
राजा जनक का दरबार लगा हुआ है, सभा में स्तब्धता छा जाती है, जब वार्ता होती है, याज्ञवल्क्य से, उनमें और गार्गी के बीच में बहुत विवाद चल रहा है। गार्गी प्रश्न करती जाती है, याज्ञवल्क्य उत्तर देते जाते हैं, मैं उसका संक्षेप बता देता हूँ। याज्ञवल्क्य कहते हैं जो आत्मा के अंदर अंतर्यामी रूप से है, जिसको आत्मा बोधगम्य नहीं कर पा रही है कि मेरे अंदर अंतर्यामी परमात्मा है। यही स्थिति सब के साथ है, बृज में वो सामने क्रीड़ा कर रहा है, आवेश स्वरुप, तो भी सखियों को पता नहीं, रास में ओझल हो जाता है तो वन में खोजती हैं, वो शरीर को देख रही हैं। हम सुन्दरसाथ भी परमधाम की स्थूलता में खोजने का प्रयास करते हैं, इसलिए कहा है,

मैं हक अर्स में जुदे जानती, ल्यावती सब्द में बरनन।
जड़ में सिर ले ढूंढ़ती, हक आए दिल बीच चेतन।।58।।
सिनगार प्र.3

मैं हक अर्स में जुदे जानती, परमधाम में सखियाँ समझ रही हैं कि राज जी और हम दो हैं, हम राज जी को रिझाते हैं, हमारा इश्क़ बड़ा है। श्यामा जी से यही भूल हो रही है, सबसे भूल हो रही है क्योंकि किसी को यह पता नहीं है कि हक नजीक सेहरग से। इसीलिए क्या कहा है – **चरचा सुणजो दिन ने रात, आपणने त्रूठा प्राणनाथ।**
हम बृज में फ़िदा नहीं हो पाये, त्रूठा का अर्थ क्या होता है, सर्वस्व समर्पण कर देना, और यह

समर्पण बिना ज्ञान के नहीं हो सकता क्योंकि ज्ञान ही पहचान दिलाएगा।

पेहेचान बिना गिरो क्या करे, या यार या सिरदार।

वही अक्षरातीत बृज में हैं, सब ठुकरा देती हैं, हम रास करने आपके साथ जाएँगी तो गाँव वाले क्या कहेंगे, सारा समाज क्या कहेगा, कोई जाने को तैयार नहीं। अब रास में उसी अक्षरातीत को खोजती फिर रही हैं कि इस कुंजवन में देखो, यहाँ देखो, यहाँ देखो, श्यामा जी ने जो तन धारण किया, उनको भी बेहोश देखती हैं।

आगे के प्रसंगों में यही आएगा कि सखियाँ बृज लीला का नाटक करती हैं तो राज जी प्रकट हो जाते हैं। बृज का नाटक करने से राज जी का आवेश प्रकट होता है क्योंकि उसमें इंद्रावती जी की आत्मा सब सुन्दरसाथ का मार्ग दर्शन कर रही है और बृज से रास में जाने का अभिनय करती है और कहती है कि राज जी आओ। जागनी का ब्रह्मांड हमें ऐसा करने के लिए ही प्रेरित कर रहा है, जागनी के ब्रह्मांड में तारतम वाणी में राज जी ने यही कह दिया, अर्स तुम्हारा मेरा दिल है, अभी आपने किरन्तन सुना था।

हम सुन्दरसाथ वाणी पढ़ते तो हैं, ख़ुशी की बात है कि हर सुंदरसाथ वाणी की गहराइयों को काफ़ी सीमा तक समझने लगा है, चौपाइयों के अर्थ जानना अलग है लेकिन एक अनुभूति होना, विश्वास हो जाना कि मेरी आत्मा के दिल में मेरा प्रीतम बसता है, यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। हम कई भाषाओं में व्याख्यान दे सकते हैं, हज़ारों चौपाइयों को कंठस्थ कर सकते हैं। अर्स तुम्हारा मेरा दिल है, इसकी भी अच्छे से व्याख्या कर सकते हैं, लेकिन स्वयं की अनुभूति के धरातल पर खड़े हो जाना कि मेरा प्रीतम मेरे दिल में रहता है, यह बहुत बड़ी चीज़ है। रास की वाणी की एक चौपाई हमें बहुत शिक्षा देती है, किंतु हम सुन्दरसाथ उसकी अवहेलना कर देते हैं। उसमें क्या कहा गया है कि सखियों के शरीर अलग अलग हैं, **आतम सहुनी एकज दीसे, जुजवी ते दीसे देह।** शरीर सबके अलग अलग दिख रहे हैं, लेकिन सबके अंदर परमधाम की वही समान आत्मा है। यह एकत्व का संदेश है, कि जिस दिन हम सब सुन्दरसाथ के अंदर उसी चेतना के स्वरूप को देखेंगे, गीता में संकेत किया लेकिन गीता को पढ़ने वाले, गीता की व्याख्या करने वाले, गीता पर प्रवचन करने वाले, ख़ुद नहीं जान पाते हैं। गीता क्या कहती है कि गाय में, कुत्ते में, ब्राह्मण और चण्डाल में भेद न देखो। गाय पवित्र जानवर है और कुत्ता अपवित्र माना जाता है, कुत्ते और गाय में जो भेद नहीं देखता है, ब्राह्मण में और चण्डाल के तन में जो भेद नहीं देखता है वही तो महान होता है, वही एकत्व को प्राप्त करता है।

विवेकानंद जी ने क्या देखा था, मैं सन्यासी हूँ और मेरे सामने यह गणिका नृत्य करेगी मुझे नहीं सुनना है, क्योंकि उनको सन्यास के नियमों की याद आ रही है। उनके नियम अपनी जगह हैं लेकिन जब उसका गायन सुना कि **प्रभु जी मेरे अवगुण चित ना धरो**, तो विवेकानंद को याद आ गई वो बात जो शंकराचार्य ने चण्डाल के चरणों में अपना शीश झुकाया था।

हमारे लिए भी आज रास ग्रन्थ के माध्यम से विशेष संदेश हैं, कि सब के प्रति उसी भावना से देखें, **जुजवी ते दीसे देह**, कोई बुड्ढे का तन लिए हैं, कोई युवा है, कोई स्त्री है, कोई पुरुष है, कोई काला है, कोई गोरा है। हम जब तक बाह्य आँखों से देखते रहेंगे तब तक हमारी जागनी रास अधूरी है। योगमाया की रास में भी अंधकार है, जैसे हर जगह गरबा खेलने को भी रास खेलना ही कह देते हैं। कुछ समय के बाद नवरात्रे आने वाले हैं, गुजरात में गरबा की धूम मचेगी, उत्तर भारत में भी, लोग नाचेंगे कहेंगे कि गरबा कर रहे हैं, रास कर रहे हैं। वो तो शरीर का स्पंदन कर रहे हैं, वो तो कला सिखा दे तो कोई भी कर लेगा लेकिन रास करने के लिए आप को त्रिगुणातीत अवस्था में जाना पड़ेगा, स्वयं को त्रिगुणातीत स्वरूप में देखना पड़ेगा, मैं शरीर नहीं हूँ, मैं हड्डी मांस का कोई पिंड नहीं हूँ, मैं मन चित बुद्धि अहंकार नहीं हूँ। मैं शुद्ध चेतना हूँ और मेरी आत्मा का प्रीतम कौन है, एक परमात्मा।

जब दो साल का बच्चा अपनी माँ के गले से लिपटता है तो सारे संसार को भूल जाता है, माँ भी भूल जाती है, एक पवित्र संबंध है दोनों के अंदर। रास की चौपाइयों में वही दर्शाया गया है, क्रीड़ा किसके साथ हो रही है, जो रस का अनंत सागर है, वो अपनी लहरों के साथ क्रीड़ा कर रहा है। उसको पढ़ कर लहरें उछलती है, पुनः सागर में विलीन हो जाती हैं।

एक संसारी व्यक्ति तो यही समझेगा, खिन खिन आलिंगन कीजे, खिन खिन चुम्बन दीजे। मैं एक बार पन्ना जी में गुम्मट जी से कहीं जा रहा था, कोई प्रवाही विद्वान आए थे, उन्होंने थोड़ी सी वाणी पढ़ ली थी, हमसे कहने लगे, यह बहुत पुरानी बात है, आज से तीस साल पुरानी बात होगी। कहने लगे आपकी वाणी में रास ग्रन्थ है तो मैंने कहा है। कहने लगे कि उसमें तो काम शास्त्र वर्णित है, मुझे हँसी आ गई, मैंने कहा कि आपने ग़लत समझा है। उसमें काम शास्त्र नहीं है, योग का सर्वोपरि शास्त्र है, उसको समझने के लिए अंतर्दृष्टि चाहिए।

जिसका जो स्तर होता है, उसी स्तर से वो व्याख्या कर देता है और हमारी कुछ टीकाओं में भी वैसे ही ग़लत अर्थ से व्याख्या कर दी गई, जिसको पढ़ने वाले समझ लेते हैं, क्योंकि वो शब्द वैसे ही हैं। उन शब्दों के भाव को समझे बिना, केवल शब्दार्थ करने से उल्टा अर्थ निकलता है और समाज वहीं भटक जाता है।

जिस रास के गहरे रहस्य को शुकदेव जैसे योगी नहीं समझ सके, विवेकानंद जी का स्तर तो शुकदेव जी से बहुत छोटा है, तो एक सामान्य विद्वान, रास की चौपाइयों का अर्थ नहीं समझ सकता है। रास की चौपाइयां यही हमें दर्शाना चाह रही हैं कि जिस कृष्ण को वृंदावन में खोजते हो वो कृष्ण कहाँ बसता है, वो तुम्हारे हृदय में ही बसता है।

कुछ वर्ष पहले एक सीरियल चला था राधा कृष्ण का, उसमें कई चीजें तो मिलावटी भी थी लेकिन हमारी दृष्टि होनी चाहिए कूड़े के ढेर से रत्न इकट्ठा करने की, उसमें एक बहुत अच्छी चीज दिखाई है कि एक बार राधा कृष्ण से कहती है कि चलो मेरे साथ कंस के पास, तुम मेरी सहायता करोगे।

श्री कृष्ण मना कर देते हैं कि मैं नहीं जाऊँगा। राधा रुठ कर चली जाती है क्योंकि कंस के द्वारा राधा को बुलावा था कि जबरन आना पड़ेगा नहीं तो तुम्हारी हत्या हो जाएगी। राधा डर के मारे जाती है, वहाँ कंस तलवार उठा कर राधा को मारना चाहता है। कृष्ण ने चलते समय कहा था कि राधा तुम बाहरी कृष्ण को देख रही हो, संकट की घड़ी में तुम अपने अंदर के कृष्ण को पुकारना। राधा को यह बात समझ में नहीं आई थी, लेकिन जब राधा ने देखा कि इस राक्षस ने मुझे मारने के लिए तलवार उठा ली है, तो सोचती है मैं तो बचूँगी नहीं, कृष्ण की बात मान लेती हूँ। वो आँखें बंद करके कृष्ण को पुकारती है अब उसका सारा ध्यान कहाँ चला जाता है, अंदर के कृष्ण पर।
यह घटना हमें क्या सिखाती है, हमें अपनी आत्मा के हृदय में बैठे हुए परमेश्वर को पुकारना है, जो वृंदावन की कुंज निकुंज में नहीं मिलता। बृज में साथ रहते हुए भी जिसको पराया समझते हैं, परमधाम में अनादि काल से लीला हो रही है फिर भी सबने क्या समझा था कि राज जी से हम अलग हैं, हम उनको रिझाती हैं, हमारा प्रेम बड़ा है यहीं धोखा खा जाती हैं। हम कौन हैं, यहीं तो भूल कर देते हैं, लहरें कहती हैं कि सागर, हमारा और तुम्हारा तो अलग-अलग अस्तित्व है। उनको पता ही नहीं कि लहरों के रूप में जो तुम उछल रही हो, तुम्हारे अंदर का जल सागर से ही तो आता है। सागर और लहर दो नहीं है और यह बात केवल प्रेम में ही समझ में आती है।
मैं एक दृष्टांत देता हूँ, ज़्यादा चौपाइयों की व्याख्या न करके, सरल शब्दों में संक्षेप में बताने का प्रयास कर रहा हूँ। मैं कालमाया की एक छोटी सी लीला दिखाता हूँ, कि प्रेम कैसे दूरी को मिटा देता है। श्री कृष्ण के द्वार पर सुदामा जाते हैं, श्री कृष्ण सोने के महल में रहने वाले और सुदामा झोंपड़ी में न रहने वाला, द्वारपाल परिचय देता है कि

धोती फटी-सी लटी दुपटी, अरु पाय उपानह को नहीं सामा।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक, रयो चकित सो बसुधा अभिरामा।।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा।
शीश पगन जगतन में, प्रभु जाने बसे को गाँव।।

ऐसा एक भिक्षुक आया है प्रभु, जिसके सिर पर पगड़ी नहीं है, शरीर पर कपड़े नहीं है। उस गरीब के पैरों में चप्पल भी नहीं है, जूता भी नहीं है, धोती फटी हुई है। वो तो पागल हो कर के आपके भवन को देख रहा है, कह रहा है कि सुदामा आया है, कह दो अपने कृष्ण से। अब कृष्ण सुदामा का नाम सुनते ही भाग छूटते हैं, रुक्मणी को भूल जाते हैं, सारी पटरानियों को भूल जाते हैं। सुदामा से गले लिपट कर सिंहासन पर बैठाते हैं। वो तो बैकुंठ के नाथ हैं, हम सुंदरसाथ का हृदय कितना कठोर होता है। जब हमारे घर कोई आता है तो हम उसके कपड़े देखते हैं, उसका स्तर देखते हैं। गरीब के साथ कुछ अलग व्यवहार होता है। बड़ी-बड़ी संस्थाओं में होता है, गरीब की कोई अहमियत नहीं

होती है क्योंकि उस बेचारे के पास पैसा नहीं होता है। जो करोड़पति होते हैं उनका हर जगह सम्मान होता है। लेकिन वो श्री कृष्ण है,

देखि सुदामा की दीन दसा, करूणा करि करूणानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छूयत नहीं, नैनन के जल सों पग धोए।।

श्री कृष्ण ने नहीं देखा कि सुदामा के शरीर पर कितनी धूल है। उनका रंग रूप नहीं देखा क्योंकि श्री कृष्ण तो महल में रहते हैं और सुदामा को क्या कहना था। सुदामा की पत्नी ने कहा था कि पति देव! यदि निकृष्ट अन्न भी हमें आधे पेट भी मिल जाते, तो मैं आपको श्री कृष्ण के पास नहीं भेजती। अब भूख से नहीं रहा जा रहा है तो मैं भेज रही हूं। आप सोचिए, श्री कृष्ण सुदामा को नहीं भूलते हैं, उसके धूल भरे कपड़ों को नहीं देखते, फटे कपड़े को नहीं देखते तो इस प्रेम ने दूरी को मिटा दिया।

करूणा करि करूणानिधि रोए। पानी परात को हाथ छूयत नहीं, नैनन के जल सों पग धोए।।

एक प्रेम ने दूरी मिटा दी, यदि वो प्रेम हमारे पास नहीं रहेगा तो हमारी दृष्टि स्थूल बनी रहेगी, यह मिट्टी का तन दिखेगा। जब हम चौपाइयां देखेंगे खिन-खिन आलिंगन लीजिए तो स्थूल शरीर को स्थूल शरीर से मिलाने का भाव लेंगे और वहां विकार पैदा होगा। हम रास को उसी दृष्टि से देखेंगे जैसे संसार के विद्वान देखा करते हैं। इसलिए रास किसको कहेंगे, रस की क्रीड़ा ही रास है। रास का आनंद लेना है तो आप अपनी आत्मा के धाम हृदय में संपूर्ण परमधाम को देखिए।

मैंने अभी थोड़ी देर पहले कहा था, श्रृंगार ग्रंथ के दूसरे प्रकरण में क्या कहा है, पुखराज पहाड़ कहाँ मिलेगा, आपकी आत्मा के दिल में, माणिक का पहाड़ कहाँ मिलेगा, आपकी आत्मा के दिल में, आप कहेंगे कि झूठ है। मैं आपको एक दृष्टांत से समझा देता हूं कि कैसे यह सच है। अभी कुछ महीनों के बाद शरद ऋतु आ जाएगी, सवेरे आप निकलेंगे तो क्या होगा, चारों तरफ ओस की बूंदे दिखेंगी। उन ओस की बूंदों में देखिए, आकाश में पृथ्वी से 13 लाख गुना बड़ा सूर्य, एक एक ओस की बूंद में चमकता हुआ दिखाई देगा। जल्दी देखना हो तो आज भी देख सकते हैं आप, कपड़े तो आप धोते हैं, सर्फ को डालिए, उसमें बुलबुला बनेगा, उस बुलबुले में खुद को देखिए, आप हर बुलबुले में खुद दिखाई देंगे। धूप में करेंगे तो धूप में सूरज हर बुलबुले में दिखेगा, एक बाल्टी में कोई सूरज को इकट्ठा कर लेंगे। जब एक पानी के बुलबुले में सूरज आ सकता है तो सारा परमधाम आपकी आत्मा के दिल में आ सकता है, यह अनुभूति की बात है। आप कौन हैं? मैं आपसे पूछूँ कि आप कौन हैं, तो आप बहुत जोर लगाएंगे तो क्या कहेंगे, मैं परमधाम की आत्मा हूँ, राज जी की अंगना हूँ, बस इतना ही तो कहेंगे लेकिन अंगना क्या होती है, क्या आप जानते हैं?

जैसे कोई व्यक्ति है उसके शरीर से आत्मा निकल जाए तो क्या होगा, उसका शरीर निर्जीव हो

जाएगा। उसको जला दिया जाएगा या मिट्टी में दफना दिया जाएगा। राज जी कह रहे हैं **तुम रूहें मेरे तन हो।** आप कौन हैं अक्षरातीत की आत्मा, तो राज जी किससे हैं, जिस दिन हमें यह बात समझ में आ जाएगी उस दिन हमारी जागनी हो जाएगी। हम अक्षरातीत को क्या कहते हैं, प्राणनाथ, राज जी कहते हैं इसी रास में देखिए रास की एक एक जो लीला है यह बात समझाने के लिए है, **सखी तमे हमारा जीवन छो।**

रास में जब रास की लीला हो जाती है, वन फल आरोगने के बाद सखियां शिकायत करती हैं कि राज जी आप कहाँ चले गए थे, हमने तो बन बन में खोजा था। राज जी कह रहे मैं तो कहीं नहीं गया था, मैं तुमसे झूठ नहीं बोल सकता, देखो तुम मेरे जीव के जीवन हो, जीव के जीवन का मतलब तुम्हारे बिना मेरा अस्तित्व नहीं है।

पूरी सागर की वाणी पढ़ जाइए, श्रृंगार की वाणी पढ़ जाइए, रास से लेकर कयामतनामा तक की वाणी पढ़ेंगे, परमधाम की ब्रह्मात्माओं को क्या कहा जाता है? ब्रह्मात्मा का अर्थ ही होता है जिसके बिना ब्रह्म नहीं।

जैसे जब तक राज जी मेरे तन से सेवा ले रहे हैं, ले रहे हैं, मान लीजिए मेरी आत्मा शरीर से बाहर निकल जाए तो क्या करेंगे, आप भी जमीन में दफना देंगे मेरे शरीर को या जला देंगे, थोड़ी देर रो लेंगे, लेकिन करेंगे तो वही। इस शरीर का अस्तित्व किससे है, आत्मा से है, वैसे ही परमधाम की लीला का अस्तित्व किससे है, ब्रह्म आत्माओं से है। और ब्रह्म आत्माओं ने इस माया के संसार में आकर देवी देवताओं की नवधा भक्ति पकड़ ली है, स्वयं को नहीं जानती कि मैं कौन हूं। यह बताने के लिए वाणी आई है। रास की वाणी यही बता रही है कि पहले हम स्वयं को पहचाने कि हम कौन है। हम स्थूल शरीर के मांस पिंड नहीं है। हमने अपने को मांस पिंड समझ रखा है। यह एक साधन है, यह हमारा स्वरूप नहीं है, यह तो रूप है, उपनिषदों की वाणी यही बताती है। लेकिन जो बड़े-बड़े मंडलेश्वर होते हैं, बड़े-बड़े विद्वान होते हैं, उनकी अंतर्दृष्टि नहीं खुली होती है। वही जातपात का भेदभाव, उनके पास कोई गरीब नहीं बैठ सकता, कोई छोटी जात का नहीं बैठ सकता। प्रवचन करेंगे वेदांत पर, प्रवचन करेंगे गीता पर, वेद पर प्रवचन करेंगे लेकिन स्थूल शरीर के दृष्टि से ऊपर नहीं उठ पाते हैं, हम भी नहीं उठ पा रहे हैं।

वाणी का अवतरण इतने वर्षों से हो चुका, 350 वर्ष पहले से वाणी अवतरित हुई, हम सुंदरसाथ भी अपने जीवन में न जाने कितने पाठ कर जाते हैं। रास की वाणी को हम केवल नाचने गाने तक सीमित समझ लेते हैं, रास की एक एक चौपाई हमारे लिए प्रेरणादाई है। आप देखिए चितवनी के बारे में जब सबको कहा जाता है तो कितने सुंदरसाथ की शिकायत होती है, कोई कहता है कमर दर्द होता है, कोई कुछ बहाना करता है, कोई कुछ बहाना करता है। उन गोपियों से शिक्षा हमें लेनी है कि एक बार बांसुरी बजती है और एक दो नहीं 36,000 ने शरीर छोड़ दिया। 12,000 ब्रह्म सृष्टि ने और 24,000 ईश्वरीय सृष्टि ने, कितना बड़ा क्रांतिकारी कदम कहा जा सकता है

आज की भाषा में। श्री जी के साथ 5000 की जमात है जिसमें 500 ब्रह्म सृष्टियां हैं, 1500 ईश्वरीय सृष्टि है और साथ में 3000 जीव सृष्टि भी है। 5000 की संख्या श्री जी के सामने बैठी हुई चर्चा सुन रही होती है। जीव सृष्टि हमेशा यही मनाती है कि जल्दी से जल्दी चर्चा खत्म हो जाए। इसलिए बीतक में अष्ट पहर में लिखा है **सबसे पहले उठी आम,** वो परेशान है। परमधाम की वाणी अंदर घुस नहीं रही लेकिन उन्होंने भी घर द्वार छोड़ा है सभी को सुंदरसाथ ही कहा जा रहा है **पर पावे करनी माफक।** जागनी के ब्रह्मांड में जिसने अपनी आत्मिक दृष्टि से समझ लिया, हम कौन हैं, हम प्राणेश्वर अक्षरातीत की अर्धांगिनी हैं, हम संसार के सभी बंधनों से परे हैं, यह अपने स्वरूप की पहचान है। और जब उस अवस्था में परातम का श्रृंगार सजकर आप चितवनी में बैठते हैं तो आपको क्या दिखाई देगा, आपको अपने निज स्वरूप की तब पहचान होगी कि वास्तव में हम कौन हैं। जब तक आप संसार के पंथ पैंडों के विचारों में फंसे रहेंगे तब तक आप अपने स्वरूप को नहीं जान सकते। रास की वाणी यही सिखाती है, एक बांसुरी की आवाज सुनने पर सबने शरीर छोड़ दिया और 350 वर्षों से अधिक समय तक वाणी की बांसुरी, जो योगमाया की बांसुरी से हजारों गुना लाखों गुना अधिक मीठी है क्योंकि रास की बांसुरी तो केवल नाम पकड़ करके बुला रही है लेकिन परमधाम की ये बांसुरी राज जी के, श्यामा जी के, एक-एक अंग का श्रृंगार वर्णन करके बुला रही है। देखो मेरे होंठ कैसे हैं, मेरे गाल कैसे हैं, मेरे नेत्र कैसे हैं, मेरे चरण कमल कैसे हैं। फिर भी हमारा हृदय, शरीर छोड़ना तो दूर, मन की तृष्णाओं को भी नहीं छोड़ पाता। योगमाया में जाने के लिए शरीर छोड़ना पड़ा, राज जी हमें कहते हैं कि **पेहेले पी तूं सरबत मौत का, कर तेहेकीक मुकरर।** मन से मर जाओ। सारे संसार के सुखों को भोगते हुए भी हम मन से मर जाएँ तो राज जी कहते हैं कि आप पूरी योगमाया को देख सकते हो, महारास को देख सकते हो, बृज की लीला को देख सकते हो, परमधाम के 25 पक्षों को देख सकते हो और यहां से प्रारंभ होती है हमारी जागनी की रास।

इसलिए अनंत ब्रह्मानंद के सागर में क्रीड़ा करना ही रास है, बस यह समझ लीजिए, अंगों के स्पंदन, नृत्य की कलाओं का प्रदर्शन रास नहीं है, वो तो इस दुनिया के माध्यम से समझाया गया है। इसलिए रास का जो पहला ग्रंथ है हमें कई महत्वपूर्ण तथ्य सिखाता है।

चरचा सुणजो दिन ने रात, आपणने त्रूठा प्राणनाथ। हम पहले फिदा नहीं हो सके थे, बृज रास में नहीं हो सके थे, परमधाम की तो भूमिका है लेकिन पहचान करके फिदा नहीं हो सके थे, इसलिए वाणी का चिंतन करना है। यह वाणी आपको अक्षरातीत की पहचान कराएगी। जैसे सखियों ने तन छोड़ा था, सब सुंदरसाथ चितवनी में, चिंता न करें कि कमर में दर्द हो रही है, बैठना प्रारंभ कीजिए। शरीर से परे हो जाइए। जैसे सखियां शरीर से परे होकर योगमाया में पहुंची, आप चितवनी में शरीर से परे हो जाइए। यहां से बैठे-बैठे राज जी के हृदय में भी विहार कीजिए। उनका हृदय तो प्रेम आनंद का अनंत सागर है, प्रतिदिन रास कीजिए। जागनी के ब्रह्मांड में सुनहला अवसर मिला हुआ है

सबके लिए। हर पल का मूल्य हमें समझना है और ऐसा समाज जो कर्मकांड की दीवारों से टकरा टकराकर अपने सिर में बड़े-बड़े घाव कर चुका है, इस भटके हुए समाज को प्रेरित करने के लिए सब सुंदरसाथ को वाणी के चिंतन और चितवनी में पूरी शक्ति के साथ लग जाना है।
समझ लीजिए, यही रास ग्रंथ का सार है। मैं आशा करता हूं कि देश विदेश में जो भी सुंदरसाथ, रास की चर्चा सुन रहे होंगे वो इन बातों को अंगीकार करेंगे और हमारे समाज में एक आमूलचूल परिवर्तन होगा जो सबको जागनी की रास की वास्तविक ज्योति को दर्शाएगा।

ल्याओ प्यार करो दीदार

क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।
ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन।।

।। प्रणाम जी ।।

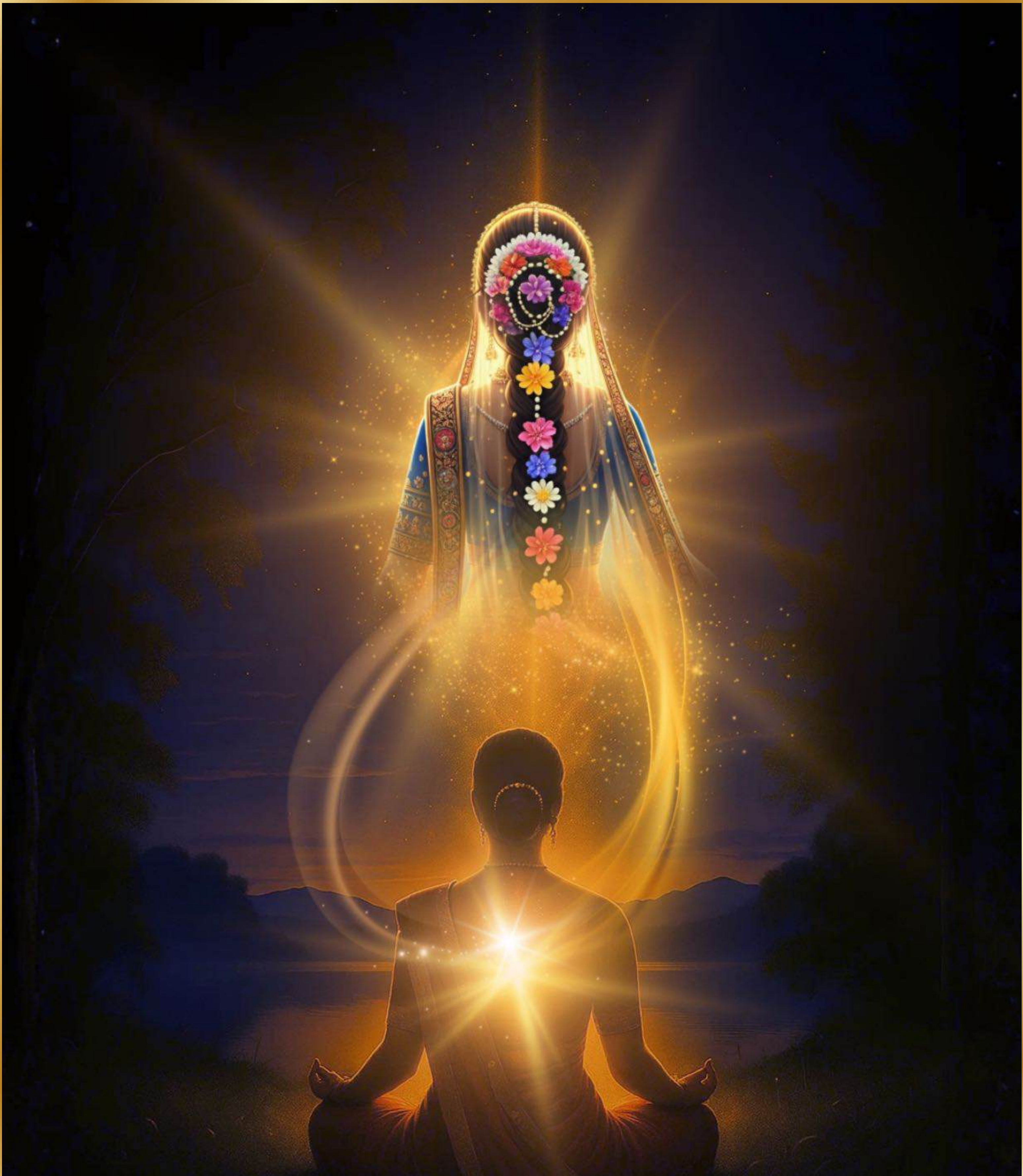

श्री प्रकाश

इतहीं बैठे घर जागे धाम

श्री प्राणनाथ जी वाणी
|| प्रेम खोल देवे सब द्वार ||

साथ को घरों ले जाना सही, कोई माया में ना सके रही।
खैंचे सबों को ए बानी, फिरसी घरों धनी पेहेचानी।।6।।
प्रकाश हिंदुस्तानी प्र.9

इस एक चौपाई में अक्षरातीत ने सब कुछ कह दिया है। इस ग्रंथ का नाम ही प्रकाश है। प्रकाश का आशय क्या है? उस सत्य का प्रकाश करना, जिसके उजाले में अज्ञान का अंधकार मिट जाता है। मनुष्य अपनी बुद्धि पर इतराता रहता है, लेकिन वह नहीं समझता कि ज्ञान का प्रकाश अलग है और बुद्धि की विलक्षणता अलग। गौतम बुद्ध ने अनेक ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया था, जबकि रावण 10 विद्याओं का पंडित था। इसलिए उसके 10 मुखों की कल्पना की गई। परंतु रावण ज्ञानी नहीं था, केवल वेद का पंडित था। ज्ञानी होना अलग बात है और केवल शब्द-ज्ञान रखना अलग। आज हमारा समाज भी इसी भ्रांति का शिकार है। प्रकाश का अर्थ है – जितने भी संशयात्मक तथ्य हैं, उन सबको समाप्त कर देना। आप देखें, वाणी क्या कह रही है – **साथ को घरों ले जाना सही, कोई माया में ना सके रही।** वाणी का उद्देश्य है, सबको परमधाम ले जाना, ताकि कोई भी माया में बंधा न रह जाए। यही वाणी खींच रही है, कोई व्यक्ति या स्थान नहीं। लेकिन आज स्थिति यह है कि वाणी की अवहेलना होती है और या तो व्यक्ति पूजा होती है या स्थान पूजा।
इसका सार यही है – **वली तेह चरचा ने तेहज वाण, वचन केहेतां जे प्रमाण।**
रास में भी चौपाई आती है – **तेहज वाणी ने तेहज चरचा, प्रेम तणी रसाल।**
जो वाणी श्री देवचंद्र जी के मुखारविंद से अवतरित होती थी, वही श्री मिहिरराज के मुखारविंद से भी अवतरित हो रही है। किंतु सुंदरसाथ की आस्था सतगुरू महाराज में है, जिनके भीतर राज जी लीला कर रहे हैं। सबने तारतम लिया श्री देवचंद्र जी से, इसलिए भ्रम यह हुआ कि हम भी तो मिहिरराज जैसे हैं। जयराम कंसारा जी को भी यही भ्रम था। लेकिन जब पहचान हुई, तो बीतक में लिखा - **आरोगाये श्री राज।** श्री मिहिरराज के तन से उन्हें कठोर वचन कहे जाते हैं। बीतक में आप सब पढ़ते हैं कि इतने कठोर वचन, जिनका अर्थ मैं तो नहीं करूँगा, लेकिन चौपाई बोल देता हूँ – **चचोड़त ठौर मुरदार।** इसका अर्थ आप अच्छी तरह जानते हैं। फिर भी उनके हृदय को बुरा नहीं लगता, क्योंकि उन्हें यह ज्ञात है कि यह वाणी श्री देवचंद्र जी के मुख से निकल रही है और इसका उद्देश्य केवल परमधाम की ओर जागृत करना है। सब सुंदरसाथ प्रकट वाणी का पाठ करते आए हैं। पुरानी पीढ़ी विशेष रूप से ऐसा करती रही है। प्रकट वाणी में एक अत्यंत महत्वपूर्ण चौपाई है –

ए तीन ब्रह्मांड हुए जो अब, ऐसे हुए ना होसी कब।
इन तीनों में ब्रह्मलीला भई, बृज रास और जागनी कही।।114।।
प्रकाश हिंदुस्तानी प्र.37

तीनों में ब्रह्मलीला होती है, जिसे बृज कहते हैं, रास कहते हैं और जागनी कहते हैं। अब प्रश्न यह है कि चौपाई तो सब सुंदरसाथ पढ़ लेते हैं, परंपरा से 300 वर्षों से चौपाई पढ़ी जा रही है, बृज रास में लीला करने वाला कौन है? हम सब कह देते हैं श्रीकृष्ण जी। जागनी में लीला करने वाला कौन है? तो जागनी में भी कह देंगे कि श्रीकृष्ण जी लीला कर रहे हैं। परंतु वास्तव में लीला करने वाला कौन है - अक्षरातीत। देवचंद्र जी को तीन बार दर्शन देने वाला स्वरूप कौन है –

पिया किए अति प्रसन, तीन बेर दिए दरसन।

देवचंद्र जी को तीन बार जो दर्शन हुआ, उसमें दर्शन देने वाले राज जी ही हैं। चाहे किसी भी रूप में आएँ – बारात के पीछे जाते समय, चितवनी में घुँघरी का प्रसाद खाते समय, या श्याम जी के मंदिर में किशोर स्वरूप में दर्शन देने वाला कौन है – राज जी। मैं आपको एक दृष्टांत से समझाऊँ। यह 19वाँ कार्यक्रम है। 2005 में पहला कार्यक्रम हुआ था, जिसमें स्थापना हुई थी। उस समय का यदि वीडियो या फोटो हो, तो आप कहेंगे, नहीं, मुझे तो 2005 वाला ही वीडियो चाहिए। यदि मैं सुनाऊँ, तो आप मुँह फेर लेंगे और कहेंगे, नहीं, मुझे तो आपके मुख से सुनना नहीं, केवल 2005 वाला वीडियो चाहिए। अब बताइए, श्रेष्ठ क्या है? मैं साक्षात् इस समय इस तन से सुना रहा हूँ और आप मेरी बात सुनना नहीं चाहते, बल्कि 2005 की वीडियो की आरती उतारते हैं। उस वीडियो में तो केवल आवाज आ रही है, उसमें मैं उपस्थित नहीं हूँ। हाँ, मेरे क्रियाकलाप अवश्य संग्रहित हैं। आज वही स्थिति है। इसी प्रकाश की चौपाई है –

तो वचन तुमको कहे जांए, जो तुम धाम की लीला मांहें।
बृजवालो पिउ सो एह, वचन आपन को केहेत हैं जेह।।61।।
प्रकाश हिंदुस्तानी प्र.29

श्री मिहिरराज के तन से जो वाणी की चर्चा सुनाई दे रही है, यह कौन है - वही राज जी हैं, जो बृज में लीला कर रहे थे।

रास मिने खेलाए जिने, प्रगट लीला करी है तिने।
धनी धाम के केहेलाए, ए जो साथको बुलावन आए।।62।।
प्रकाश हिंदुस्तानी प्र.29

जिस आवेश स्वरूप ने रास में लीला की, वही प्रत्यक्ष रूप से श्री मिहिरराज के तन में लीला कर रहे हैं। लेकिन शब्दों की ओर किसी का ध्यान नहीं है। तोड़-मरोड़ कर ऐसी धारणा बना दी गई है जिसमें प्राणनाथ जी के स्वरूप को केवल संत, भक्त या महापुरुष के रूप में चित्रित किया जा सके। और यह अनजाने में नहीं, बल्कि जानबूझकर किया गया है। सुंदरसाथ भी सोचते हैं कि चलो, क्या

अंतर पड़ता है, सब ठीक ही तो है। पर संसार में सब कुछ ठीक नहीं होता। यदि सब ठीक होता, तो विकृति, राग-द्वेष और घृणा का वातावरण नहीं होता। कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है।

आप देखिए, महाभारत का युद्ध कहाँ से प्रारंभ हुआ। इसे हल्के में नहीं लेना चाहिए। महाभारत का युद्ध प्रारंभ हुआ क्योंकि भीष्म पितामह की निष्ठा सत्य और धर्म पर नहीं, बल्कि उस सिंहासन पर थी जिस पर उनके पिताजी विराजमान थे। उन्होंने अपने पिता को वचन दिया था कि इस सिंहासन की रक्षा करेंगे। राजा जिस सोने के सिंहासन पर बैठता था, उसी को उन्होंने वास्तविक सिंहासन मान लिया। पर वह तो स्थूल सिंहासन था। वास्तव में सिंहासन क्या होता है – न्याय और धर्म का सिंहासन। उसकी रक्षा करना आवश्यक था। यदि भीष्म पितामह ने न्याय और धर्म के सिंहासन की रक्षा की होती, तो महाभारत का युद्ध कदापि नहीं होता। भीष्म पितामह ने सत्य की रक्षा नहीं की। भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य दोनों का एक ही रटा-रटाया सिद्धांत था कि हम धर्म पर हैं, हम अधर्म नहीं कर रहे हैं। द्रोणाचार्य का सिद्धांत था कि पिता को पुत्र की रक्षा करनी चाहिए। उनका पुत्र अश्वत्थामा दुर्योधन से जुड़ा था, इसलिए वे अपने पुत्र के विरुद्ध नहीं जा सकते थे। इसी को उन्होंने धर्म मान लिया। भीष्म पितामह जानते थे कि कौरव अत्याचारी हैं, द्रौपदी का चीरहरण हो रहा है। लेकिन सिंहासन पर बैठा राजा धृतराष्ट्र उनके लिए पुत्र के समान था। इसलिए वे हाथ जोड़कर कह रहे हैं – "महाराज, अन्याय हो रहा है।" धृतराष्ट्र जब सिंहासन पर नहीं बैठता था, तब भीष्म पितामह उसे डाँट लेते थे, लेकिन जैसे ही वह सिंहासन पर बैठता था, वे उसके अधीन हो जाते थे। उन्होंने सिंहासन की गरिमा रखी, पर यह निर्णय नहीं किया कि सिंहासन किस पर आधारित है। इसीलिए महाभारत में बहुत ऊँची बात कही गई है –

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्।

धर्म का तत्व उस गुहा में स्थित है जिसमें ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। धर्म के स्वरूप को हर कोई नहीं जान सकता। धर्म के स्वरूप को केवल कृष्ण जानते थे, भीष्म पितामह नहीं जानते थे। महाभारत के युद्ध के पश्चात भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को बहुत उपदेश दिया, जिसे शांति पर्व में अत्यंत महत्वपूर्ण दृष्टि से देखा जाता है। उन्होंने विदुर को भी शिक्षा दी थी, लेकिन धर्म के स्वरूप को भीष्म पितामह कभी पूरी तरह नहीं जान पाए। केवल योगेश्वर श्रीकृष्ण ही जानते थे और कुछ अंशों में विदुर जी जानते थे, क्योंकि विदुर जी को धर्म का अवतार माना जाता था। अब श्रीकृष्ण की लीला देखिए। श्रीकृष्ण ने कोई सांसारिक रिश्ता नहीं निभाया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि मैं पांडवों के साथ केवल इसलिए हूँ क्योंकि पांडवों के साथ धर्म है। यह मेरे फूफा के लड़के हैं, फुफेरे भाई हैं, इस कारण से अर्जुन से मेरा स्नेह नहीं है। मेरे स्नेह का कारण यह है कि पाँचों पांडव धर्म के स्वरूप हैं। लेकिन जब पाँचों पांडवों ने जुआ खेला, तब कृष्ण अलग रहे। कृष्ण द्रौपदी के चीरहरण के समय रक्षा कर सकते थे, लेकिन जब पांडव जुआ खेल रहे थे, तो जुए में जीत नहीं दिला सकते थे। उनके लिए रिश्ता महत्वपूर्ण नहीं था। उनके लिए महत्वपूर्ण क्या था? धर्म। और धर्म क्या है? सत्य ही धर्म है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः – सृष्टि किस पर टिकी हुई है? पूरा मंत्र यह कहता है कि सृष्टि सत्य पर टिकी हुई है। अभी वेदार्थ करने का समय नहीं है, मैं संक्षेप में कहता हूँ कि सारी सृष्टि सत्य पर टिकी हुई है।

अब मैं पूछूँ, क्या भीष्म पितामह ने सत्य का पालन किया? नहीं। जब शांति दूत बनकर श्रीकृष्ण जाते हैं, तब कई बार अवसर आया कि युधिष्ठिर की ओर से दूत भेजे गए। अर्जुन भी एक बार गए। उस समय भीष्म पितामह को बहुत बुरा लगा कि मैं हस्तिनापुर का रक्षक हूँ, मैंने पिता को वचन दिया है कि मैं अपने बाणों से रक्षा करूँगा और यहीं भीष्म पितामह चुप हो गए। बाद में जब वे सरसैया पर पड़े, तब उन्हें अनुभव हुआ और उन्होंने कहा – **यतो कृष्णस्ततो धर्मः, यतो धर्मस्ततो जयः।** उन्होंने युधिष्ठिर से कहा था – युधिष्ठिर, तुम्हारी विजय इसलिए हुई है क्योंकि तुम सत्य और धर्म पर अवलंबित रहे हो। पांडवों के पास कितनी सेना थी? केवल सात अक्षौहिणी। और कौरवों के पास थी 11 अक्षौहिणी सेना। 11 अक्षौहिणी सेना में भीष्म पितामह को इच्छा मृत्यु का वरदान था। द्रोणाचार्य के पास जब तक धनुष-बाण है, कोई उन्हें मार नहीं सकता। कृपाचार्य और अश्वत्थामा भी अवध्य थे, उन्हें कोई मार नहीं सकता था क्योंकि दोनों अमर माने जाते थे। और कर्ण के पास जब तक कवच-कुंडल थे, कोई उसका वध नहीं कर सकता था। इतने महावीर योद्धाओं से सुसज्जित, डेढ़ गुना से भी अधिक सेना क्यों हार गई? क्योंकि वह धर्म पर नहीं थी। भीष्म पितामह भी जानते थे कि जहाँ धर्म होता है, वहीं विजय होती है, लेकिन चाहकर भी उनकी आस्था उस नकली सिंहासन पर थी। राजा का सिंहासन किस पर अवलंबित होता है? न्याय पर। जो राजा निष्पक्ष न्याय नहीं कर सकता, उसके राज्य का पतन निश्चित है। संसार की कोई शक्ति उसकी रक्षा नहीं कर सकती। जो व्यक्ति, संस्था या समाज सत्य का अनुसरण करता है वही सुरक्षित रहता है।

इसीलिए उपनिषदों में कहा गया है – **सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः।** सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। असत्य कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, उसका विनाश निश्चित है। अब आप देखिए, हमारा समाज सत्य का कितना उल्लंघन करता है। वाणी कुछ और कहती है, पर व्याख्या कुछ और की जाती है। बीतक में क्या लिखा है? जब देवचंद्र जी का प्रकटन हुआ, उसके बारे में चौपाई क्या कहती है –

सुखदाई सबन को, अखण्ड करन हार।
विश्व बन्दे अक्षर लों, सुके परीक्षित सों कह्यो विचार।।19।।
बीतक प्र.2

यह कौन स्वरूप प्रकट हुआ है? **सुखदाई सबन को,** पूरे ब्रह्मांड के लिए इनका स्वरूप प्रकट हुआ है।

अखण्ड करन हार। सारे ब्रह्मांड को इनके ज्ञान से मुक्ति मिलेगी। विश्व बन्दे अक्षर लों – संपूर्ण विश्व और अक्षर ब्रह्म तक जिनकी वंदना करते हैं, वही परब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति का प्रकटन हुआ। चौपाई यही कह रही है।

कुछ दिन पहले हमारे समाज के एक महान पुरुष का वीडियो मैंने देखा। उसमें वे कह रहे थे – जब मिहिरराज देवचंद्र जी के चरणों में आए और प्रणाम किया, तो देवचंद्र जी के भीतर स्थित शक्तियाँ समाधिस्थ हो गईं और देखने लगीं कि जागनी तो इन्हीं से होनी है। यह सुनकर मुझे बहुत हँसी आई। देवचंद्र जी के भीतर कुछ लोग तीन शक्तियाँ मानते हैं, कुछ पाँच! श्यामा जी की आत्मा, राज जी की आवेश शक्ति, जागृत बुद्धि, पूछा जाए कि ये तीनों समाधिस्थ होकर जानेंगी? अब प्रश्न है कि राज जी के आवेश स्वरूप को समाधिस्थ होने की क्या आवश्यकता है? कोई प्रणाम करेगा, उसमें कितना समय लगेगा? एक मिनट। क्या एक मिनट में समाधि लगाकर देवचंद्र जी को यह पता चलेगा? जिस तन में राज जी विराजमान हैं, उस तन को समाधि लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, सब कुछ मालूम होता रहता है। दूर से ही देवचंद्र जी ने देख लिया था कि मिहिरराज के अंदर तो वही इंद्रावती की आत्मा है जिस पर जागनी का सारा मुद्दा है। समाधि जानबूझकर के जोड़ा जा रहा है ताकि उनकी गणना साधकों में हो जाए।

समाधि कौन लगाता है? साधक लगाता है। साधक किसे कहते हैं? साध्य को पाने के लिए जो प्रयासरत रहता है, वह साधक है। और जब लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है तो वह सिद्ध कहलाता है। वाणी क्या कहती है? **रे हूँ नाहीं, रे हूँ नाहीं, सिद्ध, साध, संत री भगत, नाहूँ वैष्णव, अपरस आचार।** अर्थात न मैं सिद्ध हूँ, न साधु हूँ, न संत हूँ, और न ही वैष्णव या अपरस आचार वाला हूँ।

लेकिन हम ज़बरदस्ती कहते हैं कि देवचंद्र जी महाराज क्या हैं? श्रीकृष्ण परमात्मा के अनन्य भक्त। और उस अनन्य भक्त के शिष्य कौन हैं? महामति प्राणनाथ। जब हम इस तरह की फिलॉसफी समाज पर थोपते हैं, तो वाणी के सिद्धांतों की अवहेलना कर बैठते हैं। इसी प्रकार की विचारधारा फैलाकर बीतक में एक नई परंपरा शुरू कर दी गई है। देखिए, बिहारी जी महाराज गादी पर बैठे थे, तो मिहिरराज साष्टांग उनके चरणों में लेट जाते थे, केवल इसलिए क्योंकि वे गादी पर विराजमान थे।

गादी की महत्ता सबसे पहले किसने बताई? भीष्म पितामह ने। उन्होंने धृतराष्ट्र के सिंहासन की महत्ता बताई। यदि भीष्म पितामह ने धृतराष्ट्र के पक्षपात पर प्रहार कर दिए होते और सत्य का अवलंबन लिया होता, तो संभव था कि महाभारत का युद्ध वहीं रुक जाता। क्योंकि सारी सृष्टि को कौन संभालता है? सत्य। सिंहासन तो एक छोटी सी वस्तु है। प्रकाश ग्रंथ क्यों अवतरित हुआ? इस सत्य का प्रकाश करने के लिए कि अक्षरातीत कहाँ है। **बेठ्या आपण मांहें कहे, पण साथ माहें कोई विरलो लहे।** प्रकाश में स्पष्ट कर दिया गया है। प्रकाश ग्रंथ के जितने भी प्रकरण हैं, हर प्रकरण में किसी न किसी रूप में यही सत्य प्रकट किया गया है कि महामति जी के रूप में कौन हैं। प्रकट

वाणी में तो सब कुछ कह दिया गया है – **ए पांचो मिल भई महामत, वेद कतेबों पोहोंची सरत।**
फिर भी सुंदरसाथ प्रकाश वाणी को पढ़कर कहेगा कि प्राणनाथ कौन हैं? देवचंद्र जी के शिष्य हैं। और देवचंद्र जी कौन हैं? श्रीकृष्ण परमात्मा के भक्त। यह ठीक वैसा ही है जैसे भीष्म पितामह ने भ्रांतिवश धृतराष्ट्र के सिंहासन की रक्षा की, सत्य की रक्षा नहीं की। यदि उन्होंने सत्य और न्याय की रक्षा की होती, तो पांडवों को कभी लाक्षागृह में जाने नहीं देते, किसी भी स्थिति में जुआ खेलने की अनुमति नहीं देते। और जब उन्हें मालूम था कि पांडवों का अज्ञातवास पूरा हो चुका है, तब भी दुर्योधन का साथ देते रहे। सीधे कह सकते थे, दुर्योधन को फटकार सकते थे कि मैं अस्त्र नहीं उठाऊंगा। लेकिन इसके बावजूद वे दुर्योधन की ओर से युद्ध करने को तैयार हो गए। परिणाम क्या हुआ? महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य को क्या पता नहीं था कि कौरव अत्याचारी हैं? दुर्योधन सबका अपमान करता था। फिर भी ये महापुरूष भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण और कृपाचार्य बार-बार अपमानित होकर भी एक जड़ सिंहासन की रक्षा करने के लिए कवच बनकर खड़े हो गए और अंततः इसका दंड उन्हें महाभारत के युद्ध में भोगना पड़ा। हमारा समाज भी आज वही कर रहा है। वह वाणी के कथनों की अवहेलना कर रहा है, जैसे भीष्म पितामह ने वेद के कथन की अवहेलना की थी।
वेद ने कहा – **सत्येनोत्तभिता भूमिः** -
केवल हस्तिनापुर ही नहीं, सारी सृष्टि सत्य से टिकी हुई है। श्रीकृष्ण ने हमेशा सत्य की रक्षा की। सगा मामा कंस था, परंतु उन्होंने उसका गला घोंटकर मार डाला। कंस को उसके सिंहासन पर से खींचकर समाप्त किया। यह नहीं सोचा कि वह मेरा मामा है। पर भीष्म पितामह रिश्ते निभा रहे थे, सत्य और धर्म को नहीं देख रहे थे। परिणाम हुआ — महाभारत का युद्ध, और 18 अक्षौहिणी सेना काल के गाल में समा गई। हमारा समाज भी पीछे क्यों रहा? क्योंकि उसने महामति जी के धाम हृदय में बैठे अक्षरातीत स्वरूप की पहचान नहीं की। वह व्यक्तिवाद और स्थानवाद से जुड़ गया। वाणी का कथन उसके लिए अक्षरातीत का कथन नहीं रहा।
वाणी में क्या कहा है?
मेरी बुधें लुगा न निकसे मुख, धनी जाहेर करें अखंड घर सुख।
अर्थात मैंने इस वाणी का एक अक्षर भी नहीं कहा है।
इसी तरह प्रकाश गुजराती में कहा गया – **ए वचन मिहिरराज को प्रकट न थाए।**
और प्रकाश हिंदुस्तानी में चौपाई आई – **ए वचन महामति से प्रगट न होए।**
अर्थात यह मिहिरराज या महामति की वाणी नहीं है। यह केवल अक्षरातीत की वाणी है।
केहेने की सोभा कालबुत को भई, हिरदे बैठ केहेलाया आधार। मेरे हृदय में बैठकर स्वयं अक्षरातीत ने वाणी कही है। तारतम वाणी बार-बार यही पुकार रही है। लेकिन हम क्या कहते हैं?
एक लेख मैंने बहुत पहले पढ़ा था। उसके लेखक कोई साधारण व्यक्ति नहीं, बल्कि बड़े विद्वान थे।

उन्होंने लिखा कि महामति प्राणनाथ के स्वर में अक्षरातीत का स्वर लिपटा हुआ प्रतीत होता है। अकेले प्राणनाथ जी यह वाणी नहीं कह सकते थे। देखने में यह बात छोटी लगती है, पर वास्तव में सब कुछ है। इससे प्राणनाथ जी को साधारण व्यक्ति बना दिया गया। एक और विद्वान थे, अब वे भी नहीं रहे। वे कहते थे कि प्राणनाथ जी की लीला तो मनुष्य की लीला है। देखिए, दिल्ली में जब जाते हैं तो कहां-कहां भटकना पड़ता है, सिफारिश करनी पड़ती है। श्रीकृष्ण की लीला तो पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की लीला है, वह कंस को मारते हैं, गोवर्धन उठाते हैं, चमत्कार करते हैं। प्राणनाथ जी में तो कोई शक्ति नहीं थी।

अब उन्हें कौन बताए कि यदि चमत्कार ही देखना हो तो वाणी की चौपाई देखें -

साधो केहेर कही करामात, ए दुनियां तित रांचे।

यदि श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाया, यदि उन्होंने मरे हुए को जीवित किया, तो महामति जी के तन से भी ऐसी ही लीलाएँ प्रकट हुईं। उन्होंने कुबड़ा को ठीक किया, इन्होंने ललिता को स्वस्थ किया। नागजी भाई के सामने मौत खड़ी थी – **मलकल मौत झलूविया,** श्रीजी की कृपा दृष्टि से मौत लौट गई। यदि श्रीकृष्ण ने अजगर के मुख से ग्वाल-बालों को जीवित निकाला, तो श्रीजी के द्वारा भी वैसी ही लीला हुई। कहने का आशय क्या है? हृदय में यदि पक्षपात की प्रवृत्ति हो तो कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है। इसी कारण हमारा समाज, जैसे भीष्म पितामह धृतराष्ट्र के सिंहासन की रक्षा करते रहे, वैसे ही विद्वत वर्ग आज प्राणनाथ जी के स्वरूप की महिमा नहीं बताना चाहते। प्रकट वाणी की अंतिम चौपाइयों में क्या लिखा है?

सारी दुनिया किसको अक्षरातीत मानेगी?

तब कोई नहीं किसी के संग, दुख सुख लेवे अपने अंग।

छठे दिन के बाद सातवें दिन न्याय की लीला होगी। इसका भी वर्णन है कि सारा ब्रह्मांड किसके ज्ञान से मुक्त होगा? तारतम वाणी के ज्ञान से मुक्त होगा। लेकिन हमारा समाज उसी पगडंडी पर चलता रहा। कभी किसी व्यक्ति विशेष के अधीन हो गया, कभी किसी स्थान विशेष के अधीन। और फिर उसी का महिमामंडन करने लगा। समाज को डराया गया कि यदि आप इनके कहे अनुसार नहीं चलेंगे तो देखिए इनके पास इतनी शक्ति है, इतना बड़ा समाज है, और आप तो केवल मुट्ठी भर हैं।

लेकिन याद रखना चाहिए, सत्य हमेशा शक्तिशाली होता है। सत्य का सूर्य कभी समाप्त नहीं हो सकता। असत्य के घने बादल थोड़े समय के लिए उसे ढक सकते हैं, पर सत्य के प्रकाश को समाप्त करना असत्य के लिए कभी भी संभव नहीं है।

इसलिए यदि संसार के सभी मनीषी केवल वेद की एक पंक्ति को याद कर लें – **सत्येनोत्तभिता भूमिः** अर्थात यह पूरी सृष्टि सत्य से टिकी है तो उन्हें समझ आ जाएगा कि सत्य ही धर्म है, सत्य ही परमात्मा है और सत्य ही सर्वशक्तिमान है। जिसके मन, वाणी और कर्म में सत्य होगा, उसे संसार में कोई भी पराजित नहीं कर सकता। अक्षरातीत सत्य हैं, इसलिए उनकी वाणी भी सत्य होनी चाहिए। उनकी

वाणी के विपरीत किसी का भी कथन, चाहे वह कितना भी बड़ा विद्वान क्यों न हो, कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, सारी दुनिया जिसके चरणों में झुकती हो तो भी उसके कथन को नहीं मानना चाहिए। राज जी ने स्वयं लीला करके यह सिद्ध किया कि यदि मैं भी वाणी के विपरीत बोलूँ तो मेरी बात को झूठा मान लेना। दिल्ली का प्रसंग याद कीजिए। जब दिल्ली में आड़ीका लीला हुई, तब राज जी का आवेश प्रकट होकर कहता है कि साकुमार की जागनी मैं कुछ ही दिनों में करा दूँगा। जब समय आया तो जिस सुंदरसाथ के तन से यह लीला हुई, वह श्री जी के बराबर में बैठने लगा। उसने कहा - "श्री जी, मैं आपसे ऊपर तो नहीं बैठ सकता, पर आपके बराबर में बैठ सकता हूँ।" लक्ष्मीदास जी को शर्मिंदा नहीं करना था। आने वाले समय में सुंदरसाथ को एक दिशा दिखानी थी। राज जी लक्ष्मीदास जी के घर प्रकट होते हैं, प्रतिदिन वार्ता करते हैं, भोजन करते हैं और कहते हैं - "लक्ष्मीदास, चिंता मत करो। इन लोगों से कुछ नहीं होगा। मैं तुम्हारे तन से साकुमार की आत्मा को जगा दूँगा।" जब समय आता है तो लक्ष्मीदास जी याद दिलाते हैं - "राज जी, आप अपना वचन तो पूरा कीजिए।" परंतु राज जी अंतर्धान हो जाते हैं और यह संकेत देते हैं कि यदि मैं भी वाणी के विपरीत कह रहा हूँ तो मेरी बात को बिल्कुल झूठ मान लेना।

कलश में उन्होंने कहा है -

इंद्रावती के मैं अंगे संगे, इंद्रावती मेरा अंग।
जो अंग सौंपे इंद्रावती को, ताए प्रेमें खेलाऊं रंग।।66।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.23

अर्थात, जो अपना हृदय महामति को सौंप देगा, उसे मैं आनंद में डुबो दूँगा।

सुख देऊं सुख लेऊं, सुख में जगाऊं साथ।
इंद्रावती को उपमा, मैं दई मेरे हाथ।।68।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.23

मैंने महामति को सारी शोभा अपनी दे रखी है -

नाम सिंगार सोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो।

देवचंद्र जी के भीतर कौन विराजमान थे? वही अक्षरातीत जिन्होंने बृज रास में लीला की थी। वही आवेश स्वरूप महामति जी के अंदर हब्से में प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। श्री देवचंद्र जी के अंतर्ध्यान होते ही वह स्वरूप महामति जी में विराजमान हो चुके थे लेकिन स्वयं मिहिरराज को भी यह पता नहीं था कि मेरे धाम-हृदय से अब अक्षरातीत लीला करने लगे हैं। छः माह के विरह में जब मिहिरराज की स्थिति ऐसी बन गई कि

जब आह सूखी अंग में, स्वांस भी छोड़यो संग।
तब तुम परदा टालके, दियो मोहे अपनो अंग।।8।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.8

जब विरह की अंतिम अवस्था आ गई, जिसमें प्राण भी छूट गया, तब अक्षरातीत इंद्रावती की आत्मा को प्रत्यक्ष युगल स्वरूप में दर्शन देते हैं और कहते हैं कि महामति, **सारों के सुख कारने, तू जाहिर हुई महामत।** समस्त ब्रह्मांड को तुझसे ही ज्ञान मिलेगा और तुझसे ही अखंड मुक्ति प्राप्त होगी। लेकिन हम वाणी के उन वचनों को मिथ्या कर देते हैं और आज भी समाज का एक वर्ग यही कहता है – प्राणनाथ किसके शिष्य हैं? सतगुरु महाराज के। और सतगुरु महाराज किसके भक्त हैं? श्रीकृष्ण परमात्मा के। इस प्रकार शब्दों के बंधन में अक्षरातीत को बांधना चाहते हैं। यह कितनी बड़ी भूल कहा जाता है कि कोई भी नाम रख लो, वह सही नाम नहीं है, केवल 'कृष्ण' नाम ही सत्य है। आप चाहे जो नाम रखिए, लेकिन वाणी क्या कहती है? एक पल में राज जी के अनेकों भेष होते हैं, पाग के करोड़ों रूप बदलते हैं। **पाग होत कई कोट पल में, खिन में सिंगार बदलें।** एक क्षण में करोड़ों श्रृंगार बदल जाने वाले उस अक्षरातीत को आप एक शब्द या एक नाम के बंधन में कैसे बांध सकते हैं? द्वारकाधीश का भी वही नाम है, गोलोकवासी का भी वही नाम है, बृजवासी का भी वही नाम है। नाम तो श्री कृष्ण का ही है, लेकिन यह कहना कि परमधाम में भी वही नाम चलेगा और जागनी ब्रह्मांड में भी उसी नाम को अक्षरातीत माना जाएगा – यह भ्रांति है। इन्हीं भ्रांतियों से निकालने और सत्य का प्रकाश करने के लिए प्रकाश वाणी अवतरित हुई। जिसने प्रकाश को समझ लिया, उसने पूरी वाणी से श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप को पहचान लिया।

अब देखिए, आगे की चौपाई में क्या कहा गया है –
पेहेले फेरे हुआ है ज्यों, भी इत पिया ने किया हैं त्यों।
सोई पिया और सोई दिन, देखो तारतम के वचन।।9।।
प्रकाश हिंदुस्तानी प्र.9

पहले फेरे में क्या करते थे, **बृज रास श्रीधाम के सुख, साथ को केहेते जो श्रीमुख।** देवचंद्र जी के तन से क्या होता था, **बृज रास और धाम की, पर जागनी की सुध नांहें।** पहले फेरे में श्री देवचंद्र जी बृज रास और श्रीधाम के सुख का वर्णन करते थे। जब परमधाम का वर्णन करते हुए दीवार पर हाथ फेरते, तो यमुना जी बहने लगती थी। बृज रास का वर्णन करते तो सारी लीला प्रत्यक्ष प्रकट हो जाती और सुंदरसाथ उसे दर्शन करते। लेकिन उस स्वरूप को हम क्या कह देते हैं? यह तो श्रीकृष्ण के भक्त हैं, श्रीकृष्ण की भक्ति करते हैं।

कल खटरुती का विषय है, उसकी एक बात का संकेत यहाँ करना उचित होगा ताकि उसकी महत्ता समझी जा सके।

आपोपूं ओलखावी मारा वाला, दरपण दाखो छो प्राणनाथ।
दरपणनूं सूं काम पडे, ज्यारे पेहेरयूं ते कंकण हाथ।।10।।
खटरुती प्र.8

जैसे यदि मेरे हाथ में घड़ी है और कोई पूछे कि यह कैसी है, तो मैं दर्पण में दिखाकर कहूँ कि दर्पण में देख लो, पता चल जाएगा। तो सामने वाला कहेगा, दर्पण में क्यों देखना, सीधे हाथ में ही देख लूँगा। ठीक उसी प्रकार बृज रास की लीलाएं दर्पण की तरह हैं, प्रतिबिंब की तरह हैं। वे लीलाएं तो बीत गईं। यदि आज मैं आपके सामने चर्चा सुना रहा हूँ और आप कहें कि नहीं, हम 2005 की वीडियो ही देखेंगे, तो यह कैसी बात हुई? वास्तविकता तो आज ही है। इसी प्रकार जो बृज रास में था, वही जागनी ब्रह्मांड में महामति के धाम हृदय में बैठकर लीला कर रहे हैं। किंतु हम उन्हें केवल संत कह देते हैं और यह पूछते हैं कि महामति प्राणनाथ कौन से मंत्र का जप करते थे?
महामति प्राणनाथ जी को निजनाम या श्रीकृष्ण नाम लेने की आवश्यकता नहीं थी। समाज के कुछ महान पुरुषों ने बार-बार यह प्रश्न किया है कि महामति प्राणनाथ कौन से मंत्र का जप करते थे? उनका एक ही उत्तर है कि जैसे परमधाम में राज जी को मंत्र जपने की आवश्यकता नहीं है, वैसे ही प्राणनाथ जी को भी नहीं थी। हाँ, जब उदयपुर में उन्होंने भेष बदला तो हाथ में सुमरनी ले ली, वह केवल दिखाने के लिए था। वास्तव में प्राणनाथ को किसी मंत्र-जप की आवश्यकता नहीं है। वे कौन हैं - ईश्वरों के भी ईश।

आवसी धनी धनी रे सब कोई केहेते, आगमी करते पुकार।
सो सत बानी सबों की करी, अब आए करो दीदार।।7।।
किरन्तन प्र.53

प्रकाश वाणी में कहा है – **श्रीधनीजी को जोश आत्म दुल्हिन, नूर हुक्म बुध मूल वतन।**
पांच के अलावा यदि कोई छठी शक्ति बताता है तो वह बताए। वाणी में स्पष्ट कहा गया है कि सत अंग अक्षर की आत्मा है, चितघ्न स्वरूप आवेश शक्ति के रूप में विराजमान है और आनंद स्वरूप श्यामा जी हैं। सत–चित–आनंद (सच्चिदानंद) के ऊपर भी यदि कुछ और है तो कोई दिखाए। सत अंग की क्रिया शक्ति को जोश कहा गया है, जिसे कतेब में जिबरील कहते हैं। ज्ञान शक्ति जागृत बुद्धि है, जिसे कतेब की भाषा में अशराफ़ील कहते हैं। सच्चिदानंद परब्रह्म अक्षर अपनी इन दोनों

शक्तियों, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति, के साथ विराजमान हैं। इससे बड़ा स्वरूप और क्या हो सकता है?

इसीलिए वाणी कहती है – कई हुंए, कई होएसी, पर किन ब्रह्मांडों नांहें। अर्थात् प्राणनाथ जी की महिमा के बराबर न तो कोई हुआ है और न कभी होगा। यदि आप वाणी को मानते हैं, तो यही मानना पड़ेगा। महाभारत की भूमिका कहां से खड़ी होती है? उस पक्षपातपूर्ण रवैये से, जब द्रौपदी का चीरहरण सबके सामने हुआ और भीष्म पितामह इसलिए मौन रहे क्योंकि वे सिंहासन के अधीन थे। सिंहासन जड़ है। न जड़ सिंहासन के अधीन होइए, न स्थान के अधीन, न किसी व्यक्ति के अधीन।

केवल वाणी के कथनों के अधीन होइए, क्योंकि यह वाणी अक्षरातीत की वाणी है। जो अक्षरातीत की वाणी पर चलेगा वही अक्षरातीत की वास्तविक ब्रह्म अँगना कहलाने का अधिकारी है। जो अक्षरातीत के वचनों की अवहेलना करेगा, उसे न तो सुंदरसाथ कहा जा सकता है, न ही ब्रह्मात्मा। यह तो ईमान की कमजोरी है। ब्रह्म सृष्टि की पहली पहचान क्या है? – अटूट विश्वास और अटूट प्रेम। यही दो पहचान हैं। चेहरे के रूप-रंग से कोई ब्रह्म सृष्टि नहीं हो सकता। न ही सुंदर चेहरे वाला ही ब्रह्म सृष्टि है और न काले चेहरे वाला जीव सृष्टि। जिसके हृदय में अक्षरातीत के प्रति अटूट विश्वास और अटूट प्रेम है, वही परमधाम की ब्रह्म सृष्टि है। इश्क़ और ईमान ही ब्रह्म सृष्टि की पहचान हैं। और ईमान आता है इल्म से। जब तारतम वाणी का प्रकाश ही नहीं होगा तो विश्वास कहां से उत्पन्न होगा? इसलिए वाणी कहती है –

विश्वास करके दौड़े जे, तारतम को फल सोई ले।

हमारे हृदय में जब राज जी की वाणी के लिए विश्वास नहीं है, तो राज जी पर विश्वास कहाँ से होगा? जब राज जी पर विश्वास नहीं है, तो प्रेम कहाँ से उत्पन्न होगा? जब प्रेम नहीं होगा, तो युगल स्वरूप की छवि हृदय में कैसे बसेगी? और जब छवि नहीं बसेगी, तो दर्शन कैसे होंगे? दीदार नहीं होगा तो आत्मा जागृत कैसे होगी? इसीलिए हम शरीर को पकड़े बैठे हैं, संसार को पकड़े बैठे हैं।

आप सोचिए, हमारी शक्ति क्या है? – अटूट विश्वास।

क्या वेद में लिखा है कि देवताओं की पूजा करनी चाहिए? मैं भी कहता हूँ पूजा कीजिए, पर किसकी? गुणों की पूजा कीजिए। वेद का वचन है – **मातृवान् पितृवानाचार्यवान् पुरुषो वेद।** माता, पिता, अतिथि, आचार्य – यही देवता हैं। जो महापुरुष रूप देवता हैं – भगवान राम, भगवान शिव – ये सब महापुरुष हैं। इनके गुणों की पूजा कीजिए। हनुमान जी के गुणों का सम्मान कीजिए, क्योंकि गुणों का सम्मान ही सच्ची पूजा है। लेकिन केवल चित्रों की पूजा करना, मूर्ति पूजा करना, इसका आधार वेद में नहीं है, उपनिषदों में नहीं है, दर्शन शास्त्रों में नहीं है, गीता में भी नहीं है। यदि हम वेद-शास्त्र की अवहेलना करें, तो कैसे कह सकते हैं कि हम सनातनी हैं? वास्तव में, हम तो पुराणपंथी हो जाने का नाटक कर रहे हैं। पुराणपंथी होकर कहते हैं कि हम सनातनी हैं, पर न हम

वाणी को मानने को तैयार हैं, न वेद-शास्त्र को। वही भूल आज भी हो रही है, जो भीष्म पितामह ने की थी और जिसका परिणाम हुआ महाभारत का युद्ध और भारतवर्ष का पतन। आज भी हिंदू समाज के विभिन्न संप्रदायों में वही भूल दोहराई जा रही है। एक आसन विशेष की पूजा। मैंने स्वयं देखा है कि श्रद्धा में किसी महापुरुष का आसन बिछाया जाता है, और सारे शिष्य उसी आसन को माथा टेकने लगते हैं।

अरे भाई! वह तो कपड़े का एक पिंड है, कपड़े का समूह है। उस कपड़े को प्रणाम कर रहे हो, पर सत्य को प्रणाम क्यों नहीं करते? वह सत्य, जो तुम्हारी आत्मा में विराजमान है। वही परमात्मा जिसने अनंत ब्रह्मांडों का सृजन किया है, जो अनंत सृष्टि को मुक्ति देता है, वही तुम्हारे हृदय-मंदिर में स्थित है। उससे क्यों नहीं डरते? उसके निर्देशों का पालन क्यों नहीं करते? परमात्मा के बनाए हुए नियमों का उल्लंघन करने से क्यों नहीं डरते? वाणी के वचनों का उल्लंघन करने से क्यों नहीं डर लगता?

यही हमारी भूल है, जो हमारे लिए पतन की सौगात लेकर आती है। हमारे समाज को सत्य की राह दिखानी चाहिए थी, लेकिन जब आज तक हमारा समाज प्राणनाथ जी को नहीं जान सका तो और क्या करेगा? इसलिए ही रास में स्पष्ट कहा गया है –

आपण हजी नथी ओलख्या, जुओ विचारी मन।
विविध पेरे समझावियां, अने कही निध तारतम।। 47।।
रास प्र.1

आपण हजी नथी ओलख्या – आज भी 300 वर्ष बीत जाने के बाद हम प्राणनाथ जी को नहीं जान पाए, अक्षरातीत को नहीं जान पाए। यदि वास्तव में जान लिया होता तो अक्षरातीत की वाणी के लिए हम पूरे संसार से टकरा जाते, क्योंकि वाणी सत्य है, व्यक्ति सत्य नहीं हो सकता। मुझसे कई गलतियाँ हो सकती हैं, लेकिन मैं हमेशा कहता हूँ कि आप मेरा कहना कभी मत मानिए, केवल वाणी के कथनों पर चलिए। जो वाणी कहती है, और आपकी अंतरात्मा साक्षी देती है, केवल उसी को मानिए। क्योंकि वाणी में स्वयं श्रीराज जी ने कहा है कि वाणी के कथनों को अक्षरशः मानिए। मैंने यदि लक्ष्मीदास से कहकर भी अपना वचन तोड़ा, तो केवल यह दर्शाने के लिए कि मेरे आवेश रूप का वचन झूठा हो सकता है। इसलिए यदि कोई सिद्ध महापुरुष भी वाणी के विपरीत कुछ कहे तो उसे नहीं मानना। लेकिन हमने तो प्रतिज्ञा बाँध रखी है कि हम अपने महाराज जी को कैसे नाराज़ कर सकते हैं, अपने समाज को कैसे नाराज़ कर सकते हैं। यही तो आपके अटूट ईमान और विश्वास की परीक्षा है। लगता है कि हमारा समाज इस ईमान की कसौटी पर खरा नहीं उतर पा रहा है। जिस दिन हमारा विश्वास परिपक्व होगा, उस दिन हमारे हृदय में प्रेम का ऐसा सागर उमड़ेगा कि

युगल स्वरूप आँखें बंद करते ही हमारे हृदय मंदिर में झलकने लगेंगे। जब तक विश्वास का महल कमजोर है, तब तक उसमें प्रेम की सुगंध नहीं आ सकती और जिसके हृदय में प्रेम नहीं है, उसका हृदय उस खाली महल के समान है जिसमें कोई रहने वाला नहीं होता। यदि हम अपने हृदय को प्रेम से भरना चाहते हैं तो अपने विश्वास को अटूट और दृढ़ बनाना होगा।

जैसे समुद्र के किनारे खड़े हो जाइए, लहरें आएँगी और आपको बहाने का प्रयास करेंगी। यदि आप डगमगा गए तो समुद्र में बह जाएँगे। लेकिन यदि आपने अपने पाँव जमा लिए तो लहरें आकर लौट जाएँगी। संसार में चाहे कितना भी कष्ट क्यों न सहना पड़े, हमें दृढ़ रहना है। एक सीता को देखिए, रावण कितना भी डराता, धमकाता और यहाँ तक कहता है कि यदि तुमने मुझे पति रूप में स्वीकार नहीं किया तो एक महीने में तुम्हारे मांस को पका कर राक्षसों को खिला दूँगा। फिर भी सीता को तनिक भी भय नहीं था कि मरना पड़े तो मर जाए, लेकिन राम के अलावा वह किसी को भी अपना प्रीतम नहीं मान सकती।

आप सोचिए, आप तो परमधाम के ब्रह्ममुनि कहलाते हैं, फिर भी संसार के मिट्टी के पुतलों से डर जाते हैं। सोचते हैं – इतने लोग विरोध करेंगे, इतना नुकसान हो जाएगा! लेकिन क्यों डरते हैं? आपकी आत्मा का प्रियतम तो हर पल आपके साथ है। इसलिए जागनी के ब्रह्मांड में, जागनी लीला में जो स्वरूप महामति जी के धाम-हृदय में लीला कर रहा है, उसे पहचानने की आवश्यकता है। उसकी वाणी पर अपना सर्वस्व समर्पित करने की आवश्यकता है, उसके निर्देशों पर चलने की आवश्यकता है, उसकी पहचान संसार को देने की आवश्यकता है। अपने धाम-हृदय में उसे बसाकर, उसके हृदय में डूबकर यहीं बैठे-बैठे परमधाम का सुख लेने की आवश्यकता है। इस को कहते हैं –

इतहीं बैठे घर जागे धाम, पूरन मनोरथ हुए सब काम।

ल्याओ प्यार करो दीदार

क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।
ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन।।

।। प्रणाम जी ।।

श्री कलश
जो पिउ सों बैठी मुख फेर।
श्री प्राणनाथ जी वाणी
॥ प्रेम खोल देवे सब द्वार ॥

ए झूठी तुम को लग रही, तुम रहे झूठी लाग।
ए झूठी अब उड़ जाएसी, दे जासी झूठा दाग।।12।।
सनंध प्र.12

प्राणेश्वर अक्षरातीत ने कलश की वाणी में संक्षेप में सब कुछ सार तत्व को दर्शा दिया है। हम कौन हैं, इसकी पहचान प्रारंभिक प्रकरणों में श्यामा जी के माध्यम से करा दी है। श्यामा जी को अपने प्राणेश्वर का श्याम जी के मंदिर में दर्शन होता है। राज जी दर्शन देकर उनके धाम हृदय में विराजमान होते हैं। श्री देवचंद्र जी के तन से और श्री मिहिरराज के तन से, राज जी ने जो लीला की, उस का अनुसरण करना हम सबका नैतिक उत्तरदायित्व है। उस मार्ग पर चलें जिस मार्ग पर श्री देवचंद जी ने अपने चरण कमल रखे हैं, श्री मिहिरराज जी ने चरण कमल रखे हैं। हम उनके बराबर नहीं बन सकते हैं लेकिन चलने का अधिकार तो हमारे पास भी है। हमको यह आत्मबोध होना चाहिए कि हम केवल हड्डी और मांस के पुतले भर नहीं है, जैसा कि हम स्वयं को देखते हैं।

तुम आइयां छल देखने, भिल गैयां मांहे छल।
छल को छल न लागहीं, ओ लेहेरी ओ जल।।11।।
सनंध प्र.12

छल को छल न लागहीं, खारे जल की मछली को खारा जल ही अच्छा लगता है, उसको दूध के सागर में डालेंगे तो प्राण छोड़ देगी। संसार के जीव जो मोह सागर से पैदा हुए हैं, वे मोह में ही रहेंगे, लाख प्रयास कर लीजिए। बहुत हुआ कोई संस्कारित जीव होगा तो वह प्रेम की राह पर चल पड़ेगा अन्यथा नहीं लेकिन परमधाम की ब्रह्म सृष्टि तो मोह से पैदा नहीं हुई है। **कोट ब्रह्माण्ड जाके पल थें पैदा, सो चाहे हमारा दर्शन।**
आप अपनी गरिमा को संसार के साथ न देखिए कि आप झोपड़ी में रहते हैं, आपका रूप रंग काला कलूटा है, आप बुड्ढे हैं, आपके पास धन है, नहीं है, तो आप अपने को छोटे समझ लेते हैं। किसी धनवान को देखते हैं जो अरबों में खेल रहा है, अच्छी गाड़ियों पर चल रहा है, अच्छे रूप रंग का है तो आप सोचते हैं कि वह बहुत बड़ा है और हम छोटे हैं, यह तो संसार की उपलब्धि है।
देवचंद्र जी का जन्म कैसे परिवार में हुआ था, जिनके पास अच्छे भोजन की भी व्यवस्था नहीं थी। तो श्री देवचंद्र जी ने अपने आराध्य को भोग लगाने के लिए थोड़ा सा घी, मूंग, खांड रख लिया था, थोड़ा सा बनाकर भोग लगाते थे लेकिन भरपेट भोजन तो वही करते थे जैसा परिवार के सभी सदस्य करते थे। अक्षरातीत की आह्लादिनी शक्ति ऐसे जीव पर बैठी है और उस जीव ने ऐसे परिवार

में जन्म लिया है जिनके पास दो समय के लिए अच्छे भोजन की व्यवस्था नहीं है, तो आप स्वयं को हीन भावना से ग्रसित न कीजिए कि हम कुछ नहीं हैं।

कोट ब्रह्माण्ड जाके पल थें पैदा, सो चाहे हमारा दर्शन। परमधाम की ब्रह्मात्माओं के नूरी तन को वह अक्षर ब्रह्म देखना चाहते हैं जिनके संकेत मात्र से करोड़ों ब्रह्मांड पैदा होते हैं और लय को प्राप्त हो जाते हैं और जब आप संसार के लोगों से अपनी तुलना करते हैं तो लौकिक उपलब्धियों की ही तो तुलना करते हैं। आप स्वयं को देखिए कि आप माया के छल के नहीं हैं। हमेशा चिंतन कीजिए मैं कौन हूं, जिसके लिए अक्षरातीत कहते हैं -

अब दुख न देऊं फूल पांखड़ी, देखूं सीतल नैन।
उपजाऊं सुख सब अंगों, बोलाऊं मीठे बैन।।4।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.23

अक्षरातीत आपके लिए कहते हैं -

अब दुख आवे तुमको, तहां आड़ा देऊं मेरा अंग। आप अपनी गरिमा को तब समझेंगे जब राज जी से मूल संबंध की पहचान होगी। आपने अपना संबंध किससे जोड़ा है, संसार से जोड़ा है, इसलिए **ए झूठी तुम को लग रही, तुम रहे झूठी लाग।** कीचड़ में पैर जाता है तो क्या कहेंगे कीचड़ पैर से लगा है या पैर कीचड़ से लगा है, दोनों का संबंध है।

एक महात्मा की, कहावत कही जाती है, कि उसको वृक्ष ने पकड़ लिया था, बाढ़ में फंसा हुआ था, वृक्ष ने उसको पकड़ लिया था। वो महात्मा जी बोल रहे हैं कि मैं वृक्ष को छोड़ना चाहता हूं, वृक्ष मुझे नहीं छोड़ रहा है। आप वृक्ष को पकड़ लीजिए और कहिए कि वृक्ष मुझे छोड़ नहीं रहा है, तो दोषी कौन है? यह प्रकृति का संसार है, माया का ब्रह्मांड है, इसमें सबको अपनी परीक्षा देनी होती है। चारों ओर विषयों का जाल फैला है और उन विषयों से आपको निकलना है क्योंकि परमधाम की ब्रह्म सृष्टि, गोविंद भेड़ा का मंडल, जिसको भूत मंडल कहा गया है, उसमें मोह ग्रसित नहीं हो सकती। यदि तारतम ज्ञान का प्रकाश मिला है तो आपका नैतिक उत्तरदायित्व होता है कि झूठ को छोड़ दीजिए।

ए झूठी तुम को लग रही, तुम रहे झूठी लाग।
ए झूठी अब उड़ जाएसी, दे जासी झूठा दाग।।12।।
सनंध प्र.12

आपने तारतम ज्ञान का प्रकाश लिया, चितवनी में डूब गए, संभव है माया आपसे अलग हो जाएगी

लेकिन दे जासी झूठा दाग, आपके ऊपर दाग लगा रहेगा कि माया के संसार में जाने के बाद आपने यह यह गलत काम किया था। एक चीज और आती है कि परमधाम की ब्रह्म सृष्टियां माया का खेल देखने के लिए आई है, तो यह माया जो कुछ है नहीं, कितनी भारी पड़ रही है कि सांची को झूठी लगी, ऐसो छल को बल। सांची को झूठी लगी, सच्ची कौन है, सत्य किसको कहते हैं जो अखंड हो अनादि हो। झूठ किसको कहते हैं, जो है नहीं लेकिन लग रहा है। क्या यह संसार है, जब तक ज्ञान का प्रकाश नहीं है तब तक संसार है। व्यवहारिक रूप से तो संसार है, सत्य है, सूरज है, चंद्रमा है, धरती है, आकाश है, विषय वस्तुएं हैं लेकिन जिसके पास ज्ञान का प्रकाश आ गया, जिसके हृदय में प्रीतम की छवि बसी है, **प्रीतम छवि नैनन बसी पर छवि कहां समाए**, जिसके हृदय में प्रीतम की छवि बसी, उसको संसार में कुछ और नहीं दिखता। जिसके हृदय में राज जी के चरण कमल पड़ गए, वह संसार में कभी आसक्त नहीं हो सकता। इसलिए मैं प्रायः हर चर्चा में, लगभग 20 वर्षों से अधिक समय से, हमेशा सुंदरसाथ को प्रेरित करने का प्रयास करता हूं। हो सकता है आपसे बहुत गुनाह हुए हों, उसको छोड़ने का प्रायश्चित करना चाहिए लेकिन हीन भावना से ग्रसित नहीं होना चाहिए कि हमसे यह हो ही नहीं सकता। आप हमेशा अपने प्राणेश्वर को अपने हृदय मंदिर में बसाने का प्रयास कीजिए।

जैसे अभी मैं दृष्टांत देता हूं। देखिए मंच पर हैलोजन के बल्ब जल रहे हैं, लाइट आ रही है तो सब दिख रहा है और इसी मंडप में जहां बल्ब का प्रकाश नहीं है, वहां अंधेरा सा छाया हुआ है। आपके हृदय में यदि आधे घंटे नहीं, 10 मिनट के लिए भी राज जी की शोभा झिलमिल करने लगे, राजजी की शोभा चुभने लगे, चुभने का तात्पर्य अंकित होने लगे, आप चितवनी करते हैं, राज जी के नख से शिख तक देखने का प्रयास करते हैं, शोभा आती है और अदृश्य हो जाती है। अदृश्य क्यों होती है, जैसे आप हाथ में दर्पण लीजिए और हिलाते रहिए, चेहरा देखने का प्रयास कीजिए तो दर्पण तो हिल रहा है इसलिए चेहरा पूरी तरह से दिखेगा नहीं। जो पानी हिल रहा होता है, आप दर्पण के रूप में उसमें अपना चेहरा झांकेंगे कि देखूँ पानी में मेरा रूप दिख रहा है कि नहीं, तो उसमें लहरें बह रही होंगी तो आपका चेहरा पूरी तरह से साफ नहीं दिखाई देता। इसलिए रजोगुण और तमोगुण का बंधन जब तक जीव को ग्रसित किए रहता है मन चंचल रहता है। थोड़ी देर के लिए मन शांत होता है तो लगता है कि राज जी का चरण दिख गया, राज जी का मुखारविंद दिख गया, फिर वह अदृश्य हो जाता है। लेकिन इतना भी करते रहेंगे तो विश्वास रखिए यदि आपने अपना हृदय राज जी को दे रखा होगा तो माया आपको गिराना चाहेगी लेकिन गिरा नहीं पाएगी। पैर थोड़ा सा फिसलेगा, संसार आपकी हंसी कर लेगा, लेकिन बचाने वाला कौन है, जो आपकी आत्मा के धाम हृदय में आपके प्राण के नली से भी निकट बैठा होता है। हर पल वो आपके साथ है, आप मत समझिए कि राज जी कहीं दूर बैठे हैं, परमधाम में बैठे हैं, मूल मिलावे में बैठे हैं। ये सच है लेकिन उससे भी बड़ा सच है कि हक नजीक सेहरग से, आपके प्राण की नली से भी वो निकट है।

सबसे बड़ी बात यह होती है कि हमें करना क्या है, इस जागनी के ब्रह्मांड के मूल सार तत्व को ग्रहण करना है कि ए हांसी सत ठौर की, कोई सैयां कराओ जिन। ए हांसी सत ठौर की, संसार में हंसी हो सकती है, आपने कोई गुनाह किया है, जैसे इतने सुंदरसाथ बैठे हैं, हमारे सुंदरसाथ में राज जी न करें, किसी की बुद्धि गलत हो जाए। मान लीजिए किसी की बुद्धि गलत हो जाए, कमरे में वह सुंदरसाथ है और किसी के सामान में से कुछ पैसा चोरी कर ले, कोई सामान ले ले और कैमरे में आ जाए। जो कैमरे में ले, वहां कुछ न बोले और यहां स्क्रीन पर सबके सामने दिखा दे, तो क्या कहेगा, कि भाई कमरे में मुझे 10 डंडे मार लिए होते, फटकार लगा लिए होते, यहां सबके सामने नहीं दिखाते। आप सोचते हैं कि आप कुछ भी कर रहे हैं, कौन हमें देख रहा है, राज जी तो मंदिर में बैठे हैं, दरवाजा बंद है, राज जी थोड़े देख सकते हैं। राज जी कोई इंसान नहीं है, राज जी तो क्या, नारायण की आंखों से नहीं बचे हैं आप, तो राज जी तो अक्षरातीत है, नारायण जिस अक्षर को नहीं जानते और वह अक्षर जिस अक्षरातीत का पूर्ण मुखारविंद देखने का गौरव प्राप्त नहीं कर पाए, उस अक्षरातीत की दृष्टि से आपका कोई भी कार्य अछूता नहीं है। इसलिए कहा है, **ए हांसी सत ठौर की, कोई सैयां कराओ जिन।**

सैयां कराओ जिन, ब्रह्म सृष्टियों के लिए विशेष रूप से निर्देश है। जिन तनों पर परमधाम की ब्रह्मात्मा नहीं है उन तनों से गुनाह हो जाता है, वह क्षमा है क्योंकि उनका निर्णय यहीं पर हो जाएगा लेकिन जो परमधाम की ब्रह्मात्मा है, उनके तन से गुनाह होता है, तो जानते हैं किसका सिर झुकता है। जैसे देश के प्रधानमंत्री राष्ट्रपति या कोई भी विशिष्ट व्यक्ति हो, मुख्यमंत्री, किसी राजा की रानी हो और उसने कुछ अपराध कर दिया, प्रजा आ गई राजा के पास कि महाराज आपकी महारानी ने ऐसा अन्याय हमारे सामने किया है। तो जो राजा दूसरों का न्याय करता है, अपनी प्रजा के सामने क्या बोलेगा?

लाडलियाँ लाहूत की, जाकी असल चौथे आसमान।
बड़ी बड़ाई इन की, जाकी सिफत करें सुभान।।1।।
किरन्तन प्र.71

अकेले में महाराज तो वही कहेगा कि तुमने संपूर्ण राज्य में मेरा सिर नीचा कर दिया। ब्रह्म सृष्टि कौन है, अक्षरातीत का अंग है और उससे जो भी गुनाह होता है, तो वह कलंक किस पर लगता है कि परमधाम की आत्माएं आई थी और उन्होंने भी ऐसे ऐसे गुनाह कर दिए। तो आप सोचिए यदि हमको राज जी से सच्चा प्रेम है, हम सुंदरसाथ कहलाने के गौरव का आभास करते हैं, तो जब तक वाणी का प्रकाश नहीं मिला था, तब तक हमसे भूल होती रही, राज जी सब क्षमा कर देंगे लेकिन उसके बाद भी यदि हम अपराध पर अपराध करते रहे तो आप सोचिए राज जी हमें क्या दंड देंगे। वो

नारायण तो है नहीं कि 84 लाख योनियों में भेजेंगे, बस हमारी वह भूल अनंत काल तक अखंड रहेगी, परमधाम में भी। राज जी को जब भी हंसी की लीला करनी होगी, कह देंगे कि देखो तुम माया में जाकर क्या कर रहे थे और योगमाया में हमारा अखंड जो तन होगा, हमारे जीव का, वैसे ही गुनाह करते हुए दिखाई देगा। तो आप सोचिए इसी से बचने के लिए कहा है, ए हांसी सत ठौर की, कोई सैयां कराओ जिन।

जीव सृष्टि कर लेगी, सुंदरसाथ की जमात में यदि जीव हो तो उससे गुनाह हो सकता है लेकिन मैं सब सुंदरसाथ से कहूंगा कि कोई भी अपने को जीव ना समझे, आप समर्पण के मार्ग पर चलिए यदि आपने समर्पण की भट्ठी में अपने को तपा लिया, आप ब्रह्म सृष्टि नहीं हैं तो भी मानिए कि मैं ब्रह्म सृष्टि हूं और ब्रह्म सृष्टि के भाव से यदि आप राज जी से प्रेम करते हैं, प्रतिदिन चितवनी करते हैं तो आपका जीव वहीं जाएगा जहां ब्रह्म सृष्टि का जीव जाएगा, सत स्वरूप की पहली बहिश्त में जाने से आपको कोई भी रोक नहीं सकता।

इसलिए आज यह प्रश्न नहीं है कि कौन ब्रह्म सृष्टि है, कौन ईश्वरीय सृष्टि है, कौन जीव सृष्टि है। सभी को अधिकार है कि सभी अक्षरातीत को अपना प्रियतम माने और जैसे ब्रह्मात्मा रिझाती है, माया का जीव भी रिझाये। यदि वह इसमें सफल हो गया तो जानते हैं इसका परिणाम क्या होगा, **जो किन जीवे संग किया, ताको करूं ना मेलो भंग।**, मैं उसको अपने से अलग नहीं करूंगा। **सो रंगे भेलूं वासना, वासना सत को अंग।।** रंगे भेलूं वासना का अर्थ क्या है, जो सुख ब्रह्म सृष्टि के जीव को मिल रहा है, सत स्वरूप की पहली बहिश्त में उस कोरे से कोरे जीव को भी, ब्रह्म सृष्टि के जीव जैसा, ब्रह्मात्मा के प्रतिबिंब का तन धारण करने का सौभाग्य मिलेगा।

आगे हुई ना होसी कबहूं, हमें धनिएँ ऐसी सोभा दई।
सब पूजें प्रतिबिंब हमारे, सो भी अखंड में ऐसी भई।।3।।
किरन्तन प्र.81

आप अपनी महिमा नहीं जानते हैं, धनिए हमें ऐसी शोभा दई, आपको थोड़ी सी माया की मेहर हो जाए तो आप क्या सोचते हैं, राज जी की कितनी कृपा हो गई कि हम मिनिस्टर बन गए। मिनिस्टर बनना कोई बड़ी बात नहीं है, राष्ट्रपति बनना भी कोई बड़ी बात नहीं, यह कितने साल के लिए बनेंगे, पाँच साल के लिए। लेकिन यदि आप राज जी से प्रेम कर लेते हैं तो सत स्वरूप की पहली बहिश्त में, यदि आप कोरे से कोरे जीव हैं, ईश्वरीय सृष्टि भी नहीं है तो भी अनंत काल के लिए आपका जीव ब्रह्मात्मा जैसा ही रूप धारण करके बैठेगा, यह राज जी से प्रेम करने का, चितवनी करने का फल है और यदि परमधाम की ब्रह्मात्मा भी चितवनी नहीं करती है, विकारों में फंसी रहती है तो उसके द्वारा होने वाला गुनाह अनंत काल तक उसकी हंसी कराता रहेगा।

इसलिए राज जी बार-बार सावचेत कर रहे हैं, कोई सैयां कराओ जिन।
जो अपने को मानता है कि मैं ब्रह्म सृष्टि हूँ, वो किसी भी तरह का गुनाह करने का प्रयास नहीं करे।
दुख ले चलसी इत थें, नहीं आवन दूजी बेर। इस माया के संसार में दोबारा नहीं आना है, इस बात को याद रखिए। दुख ले चलसी इत थें, यदि आपने अपनी हंसी कराने के लिए कोई गुनाह कर लिया तो उसका दुख तो हमेशा बना रहेगा। आप इतने हजारों सुंदरसाथ बैठे हैं, सब कहेंगे कि गुनाह तो होता ही है। ऐसा कोई भी सुंदरसाथ नहीं है जिससे गुनाह न होता हो, अनजाने में गुनाह हो सकता है लेकिन जानबूझकर गुनाह न कीजिए।
देखिए शास्त्रों में विधान बनाया गया है, एक अज्ञानी व्यक्ति जो अपराध करता है उससे 400 गुना अधिक दंड वहां के राजा के लिए होता है। यदि राजा वही अपराध करता है तो उसको 400 गुना दंड मिलना चाहिए और जो कोई ब्राह्मण विद्वान हो, वेद शास्त्रों का ज्ञाता हो, उतना ही अपराध करता है तो उसको 800 गुना दंड मिलना चाहिए, यह मनुस्मृति का कथन है। सन्यासी के बारे में तो सोचा ही नहीं गया क्योंकि प्राचीन काल में सन्यास का अधिकार उसी को दिया जाता था जिससे कभी कल्पना ही न की जाए कि यह अपराध करेगा और आजकल तो उल्टी गंगा बह रही है, जितने अपराधी हैं, सन्यास के वस्त्र धारण करके सारे अपराध कर रहे हैं। आखिर क्यों, आज के युग में एक सन्यासी अपराध कर रहा है, तो मस्तक सबका नीचे हो जाता है क्योंकि एक सामान्य व्यक्ति से तो आशा की जा सकती है लेकिन समाज का पथ प्रदर्शक ही अपराधी बन जाएगा तो समाज का अस्तित्व क्या रहेगा। उसी तरह से परमधाम की ब्रह्म सृष्टियां -

चरन रज ब्रह्मसृष्ट की, ढूंढ़ थके त्रैगुन।
कई विध करी तपस्या, यों केहेवत वेद वचन।।55।।
खुलासा प्र.13

जिन ब्रह्मात्माओं के चरणों के लिए सारा ब्रह्मांड तरसता रहा है, खोज थके त्रैगुण, वाणी में त्रैगुण का भाव, ब्रह्मा विष्णु शिव से लिया जाता है प्रायः लेकिन इसका आशय त्रिगुणात्मक समस्त सृष्टि के उन मनीषियों से भी है, जो योग में, ध्यान में, अग्रगण्य रहे। सारी सृष्टि थक गई कि ब्रह्मसृष्टियों की चरण धूलि मिल जाए।
भागवत में एक प्रसंग आता है, ब्रह्मा जी कहते हैं कि हे प्रभु आपकी गोपियों की चरण धूलि मुझे चाहिए। चाहे इसके लिए मुझे वृक्ष बनना पड़े, किसी भी योनि में मुझे भेज दीजिए लेकिन मैं चाहता हूं कि आपकी गोपियों की चरण धूलि मेरे ऊपर पड़ जाए। इसी संबंध में चौपाई आती है -

चरन रज ब्रह्मसृष्ट की, ढूंढ़ थके त्रैगुन।
कई विध करी तपस्या, यों केहेवत वेद वचन।।55।।

खुलासा प्र.13

वेद वचन का तात्पर्य यहां भागवत के वचनों से है, तो आप सोचिए यदि आप ब्रह्म सृष्टि हैं लेकिन आपको संसार ने मोह में डाल रखा है, छोटी सी चीजें हमको बंधन में डाले रहती हैं , कोई न कोई माया का आकर्षण हमें खींचता रहता है लेकिन राज जी से ज्यादा कोई सुंदर नहीं है। राज जी से ज्यादा कोई प्रेम करने वाला नहीं है, राज जी से अधिक कोई हमारे निकट भी नहीं है और राज जी से बड़ा कोई सर्वशक्तिमान भी नहीं है। हम सब जानते हैं लेकिन सबसे अधिक राज जी से प्रेम नहीं कर पाते। हमारा प्रेम बंटा रहता है, पत्नी का प्रेम पति के लिए, पति का प्रेम पत्नी के लिए, प्रेम क्या, मोह। संसार में जो कुछ हम देखते हैं, उसी से लिपट जाते हैं। वास्तविक प्रेम हमें किससे करना चाहिए, हम जानते हैं लेकिन उसको चरितार्थ नहीं कर पाते। इसलिए क्या कहते हैं, स्वयं धाम धनी इस वाणी में,

दुख ले चलसी इत थें, नहीं आवन दूजी बेर, अब दोबारा अवसर नहीं मिलेगा। चौथे दिन की लीला में भी आपकी आत्मा रह गई है इस खेल में, पाँचवें दिन की लीला में भी आपकी आत्मा किसी न किसी जीव पर बैठकर खेल को देख रही है लेकिन इस छठे दिन की लीला में जो सुंदरसाथ हैं उनके लिए तो बिल्कुल क्षमा शब्द नहीं है, जानते हैं क्यों, चौथे दिन की लीला में वाणी का अवतरण नहीं हुआ था, कुछ बृज रास की चर्चा मिली, कुछ परमधाम की चर्चा मिली। श्री जी के साथ जो चरणों में आए, आप देखते हैं हब्से में वाणी का अवतरण प्रारंभ होता है। पन्ना जी में 1748 तक वाणी का अवतरण होता है, 1751 में अंतर्धान लीला होती है। उस समय वाणी का अवतरण हो रहा था। आज जैसे संसाधन नहीं थे, हस्तलिखित स्वरूप साहब होते थे, सुंदरसाथ उस समय का भाग्यशाली है जिन्होंने इन नेत्रों से श्री मिहिरराज जी के पंच भौतिक तन को देखा, उनके साथ लीला में भाग लिया, उनसे अधिक भाग्यशाली कोई भी नहीं है न कभी होगा।

लेकिन उस समय भी सुंदरसाथ को इतनी सुविधाएं कहाँ थी, मंदसौर में देखिए कितना कष्ट झेलना पड़ा, लगभग आठ महीने सबको भिक्षा पर निर्भर रहना पड़ा। अभी 5000 की संख्या शायद मुझे नहीं पता पूरी हुई है कि नहीं है लेकिन सभी सुंदरसाथ धूप, शीत, वर्षा सब कष्ट झेलते हुए चल रहे हैं, औरंगजेब की सेना हर कदम पर पीछा कर रही है, वह तो संघर्ष का समय था। 10 वर्ष पन्ना जी में लीला अवश्य होती है, उसमें सभी आनंद में मग्न हो जाते हैं, यह बात ठीक है, लेकिन आज छठे दिन की लीला में, आप देखिए, आपको 249 भाषाओं में वाणी की टीका उपलब्ध है। उस समय तो यह तकनीकी सुविधाएं नहीं थी। आप अपने मोबाइल में सैकड़ों घंटों की चर्चा जब चाहे तब सुन सकते हैं। आप घर में, जिसके घर बड़ी टीवी होती है, उस पर्दे पर परमधाम के 25 पक्षों को

देख सकते हैं। उसमें तो ये डिजिटल सुविधा थी ही नहीं। आप अपने वातानुकूलित कक्ष में बैठे हैं, कुर्सी पर बैठे-बैठे परमधाम के 25 पक्षों की शोभा को देख रहे हैं। अब बताइए राज जी ने इतनी शोभा दी है, आपको बार-बार कहा जाता है कि चितवनी करो, चितवनी करो। उस समय कोई इतने संसाधन ही नहीं थे और यदि मेरे जैसा व्यक्ति होता तो किसी काम का उस समय नहीं होता, क्योंकि मेरी तो आवाज उस समय किसी के पास पहुंच ही नहीं सकती थी। आज तो माइक की सुविधा है, मैं बोलता हूं पीछे तक जा रही है। यूट्यूब के माध्यम से हजारों तक पहुंच रही है लेकिन उस समय तो सबसे निकम्मा कोई व्यक्ति होता तो मैं ही होता।
आज छठे दिन की लीला में सबको राज जी ने सुनहला अवसर दिया है कि आप घर बैठे-बैठे सारी टीकाएं पढ़ सकते हैं, चितवनी कर सकते हैं, आपको धूप शीत वर्षा का कष्ट नहीं झेलना है, भिक्षा नहीं मांगनी है। इतना होने के बावजूद भी यदि आप एक घंटा बैठकर अपने प्राणेश्वर को अपने हृदय में देख नहीं सकते, बहाने बनाते हैं कि क्या करें, काम का बहुत बोझ है, अभी नहीं करेंगे बाद में कर लेंगे, तो याद रखिए, नहीं आवन दूजी बेर, दोबारा इस जागनी ब्रह्मांड में आपको नहीं आना है और आपसे जो गुनाह हो जाएगा हमेशा हमेशा के लिए अखंड हो जाएगा। इसलिए कहा है, ए हांसी सत ठौर की, कोई सैयां कराओ जिन। आगे एक बहुत बड़ी बात कही जा रही है सब सुंदरसाथ के लिए सिखापन के रूप में -
तिन क्यों मुख ऊंचा होएसी, जो पिऊ सों बैठी मुख फेर। एक ही चरण को याद कर लीजिए, जो पिऊ सों बैठी मुख फेर, मुख फेरने का तात्पर्य क्या है, राज जी कहां बैठे हैं, बैठे मासूक जाहिर। वाणी ने स्पष्ट कह दिया, ऊपर तले अर्स ना कह्या, अर्स कह्या मोमिन कलूब। ब्रह्मात्मा का दिल ही उसका धाम है, यह बात परमधाम में पता नहीं थी।
अरवा आसिक जो अर्स की, ताके हिरदे हक सूरत। हर सुंदरसाथ अपने हृदय में उस प्रीतम की छवि को देखा करें। आपका मित्र आपके हृदय में रह सकता है, आपकी पत्नी, आपका पति आपके हृदय में रह सकता है, राज जी क्या आपके हृदय में नहीं रह सकते? क्योंकि हृदय के सिंहासन पर आपने तो पहले से किसी और को बैठा रखा है, भूल पर भूल हम करते जा रहे हैं, इसलिए तिन क्यों मुख ऊंचा होएसी, जो पिऊ सों बैठी मुख फेर।
जो सुंदरसाथ वाणी चिंतन का समय नहीं दे सकते, चितवनी के लिए उनके पास समय नहीं है। आप थके माँदे हैं कितने भी, लेकिन जब बिस्तर पर जाइए, बैठने की सामर्थ्य नहीं है, तो लेटे लेटे भी अपने आराध्य को, अपने प्राणेश्वर को, अपने प्राण जीवन को, अपने प्राण वल्लभ की नख से शिख तक की शोभा को दिल में बसा के सो जाइए। जब आप लेटे रहते हैं तो आपको अपने मित्र की याद आ जाती है, पत्नी की याद आती है, पति की याद आती है, बच्चों की याद आती है लेकिन राज जी क्या ऐसे गए गुजरे हो गए हैं, जो राज जी की याद नहीं आती सोते समय? सवेरे उठते हैं तो किसी को देखने से पहले, कुछ भी बात करने से पहले, पहला काम चितवनी। संसार के काम होते

रहेंगे और आप जब दुनिया से चले जाएंगे तो भी आपके घर के काम चलते रहेंगे।
आप जो सोचते हैं कि आपके बिना यह काम पूरा नहीं होगा तो सृष्टि में याद रखिए आज तक कोई भी महापुरूष अपने सारे कार्यों को पूर्ण न कर पाया है, न कभी कर पाएगा और किसी के न रहने पर काम रुका भी नहीं है। यह सृष्टि का सिद्धांत है। सृष्टि में न कोई पूर्ण था, न है न कभी होगा। पूर्ण केवल एक अक्षरातीत है। आप दिन रात काम करेंगे तो भी कुछ काम अधूरा से अधूरा रह जाएगा। कितनी भी सावधानी से कार्य करेंगे तो भी उसमें कुछ न कुछ अपूर्णता रह जाएगी। इसलिए सृष्टि के रहस्य को समझिए। सृष्टि पैदा हुई है, लय को प्राप्त हो जाएगी, जो पेड़ पर चढ़ता है, एक दिन उस वृक्ष से उतरना पड़ता है। इसलिए इस मोह की दलदल से स्वयं को निकालना होगा। संसार के सारे कार्य होते रहते हैं, प्रातः काल उठिए, सारे कार्यों को बंद कर दीजिए। हो सकता है, आपके घर विवाह हो, कुछ भी हो, लेकिन 10 मिनट के लिए, 10 मिनट नहीं कर सकते, 5 मिनट के लिए ही आंखें बंद करके अपने आराध्य को ध्यान में लीजिए। समय मिलता है तो एक घंटा बैठिए, दो घंटा बैठिए, तीन घंटा बैठिए, चार घंटे बैठिए, किसने रोका है और जो उस प्रेम की मस्ती में डूब जाएगा, उसको यह सारा संसार फीका लगेगा। इस जागनी के ब्रह्मांड में हमारा हर पल मूल्यवान है। अपनी ऊर्जा को बचाइए। उसको चितवनी में लगाइए, वाणी के चिंतन में लगाइए, उसे वाणी के प्रकाश को दूसरों तक फैलाने में लगाइए। यही हमारे जीवन का सार तत्व है।
यह कलश की वाणी हम सबको झकझोर कर यही बातें कह रही है।
तिन क्यों मुख ऊंचा होएसी, जो पिऊ सों बैठी मुख फेर।
हमें इस चौपाई को कंठस्थ कर लेना चाहिए। पूरी चौपाई कंठस्थ नहीं करना चाहते तो इतना तो कर लीजिए, **जो पिऊ सों बैठी मुख फेर।** राज जी से मुख फेर कर बैठना कितना बड़ा गुनाह है।
सुंदरसाथ जी सबसे मेरा एक निवेदन है, ज्ञानपीठ परिवार, ट्रस्ट पूरी तरह से प्रयासरत है कि सुंदरसाथ को किसी तरह का कष्ट न हो लेकिन अभी कुछ कारणों वश स्थान का अभाव हो रहा है, संख्या बढ़ती जा रही है, तो मेरा यह निवेदन है कि जो सुंदरसाथ जगह नहीं पा रहे हैं, यह जो लाइब्रेरी का हाल है यह सोने के लिए नहीं है, उसमें केवल सामान रखिए, यह जो मंडप है, इस मंडप में ढाई हजार सुंदरसाथ सरलता से सो सकते हैं। कुछ सुंदरसाथ सोचते हैं कि हमें 6:00 बजे तक सोने की आदत है।
यहां तो 4:00 बजे उठना पड़ेगा। अरे भाई घर पर जाइएगा, तो आप 8:00 बजे तक सो लीजिएगा, मैं तो कभी नहीं कहूंगा लेकिन आप इतनी दूर से आए हैं, 4:00 बजे तो पशु पक्षी भी उठ जाते हैं, आप तो मनुष्य से भी ऊपर हैं, देवता से भी ऊपर हैं, ईश्वरीय सृष्टि से भी ऊपर परमधाम की ब्रह्म सृष्टि हैं, तो आप 4:00 बजे तो क्या, आपको तो 2:00 बजे उठना चाहिए।
2:00 बजे नहीं उठते हैं तो 4:00 बजे उठिए, बिस्तर छोड़ दीजिए। देखिए आप लाइब्रेरी के हाल में सो

जाएंगे, अभी कल की भी कितने सुंदरसाथ की टिकट है, परसों की टिकट है, 17 तक की टिकटें हैं, उन सुंदरसाथ को जगह नहीं मिलेगी, तो वह भी तो आपके ही सुंदरसाथ हैं। इसलिए दूसरों की भावनाओं का ख्याल रखते हुए, सुंदरसाथ लाइब्रेरी के अंदर अपना समान रख दें और खुशी-खुशी इस मंडप के अंदर विश्राम करें, जाली इसीलिए ही लगाई गई है कि किसी को भी मच्छर का कष्ट न हो। कमरों में और इसमें ज्यादा अंतर नहीं है, बस अंतर यह है कि वहां कमरे की दीवारें हैं, यहां लगता है कि हमको मंडप में सुलाया जा रहा है।

सोचिए श्री जी के साथ आप होते तो क्या करते, तब तो कह देते कि श्री जी हम घर द्वार छोड़कर आपके साथ नहीं चल सकते क्योंकि आपके साथ तो हमें पेड़ों के नीचे सोना पड़ता है, भिक्षा में मिला हुआ खाना पड़ता है। श्री जी कहीं गए नहीं हैं, महामति जी के धाम हृदय में राज जी गुम्मट जी में विराजमान है, हर सुंदरसाथ के दिल में हैं।

इन गुनहगारों के दिल को अर्श कर बैठे मेहरबान, सबके दिल में अपनी अंदर की आंखों से देखिए तो सबके दिल में वही युगल स्वरूप दिखाई पड़ेंगे। इसलिए परमधाम के संबंध से, किसी तरह के स्थान के लिए आपस में मनमुटाव मत रखिए। दूसरों की सुविधाओं का ख्याल रखते हुए खुशी-खुशी पुरुष वर्ग सभी भाई मंडप के अंदर आ जाए तो बहुत अच्छा है। रसोई के ऊपर जो हाल है उसमें से भी पुरुष वर्ग आ जाए केवल बहनों को वहां ठहरने दीजिए और पुरुष वर्ग अपना सारा सामान जहां का भी हो, लाइब्रेरी के हाल में रख दें और यहां सोएं तो मैं समझता हूं, बिना किसी परेशानी के यदि संख्या 6000 भी होती है 7000 भी होती है तो कोई भी कष्ट नहीं होगा। मैं आशा करता हूं कि आप मेरे निवेदन को स्वीकार करेंगे।

ल्याओ प्यार करो दीदार

क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।
ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन।।

।। प्रणाम जी ।।

श्री सनंध
बिछरो तेरो वल्लभा, सो क्यों सहे सुहागिन।
श्री प्राणनाथ जी वाणी
|| प्रेम खोल देवे सब द्वार ||

प्राणेश्वर अक्षरातीत ने इस सनंध ग्रंथ में महामति जी के धाम-हृदय से विरह की व्याख्या बताई है। सामान्य तौर पर सुंदरसाथ अथवा मनुष्य-जन भी विरह को प्रेम समझ लेते हैं। विरह और प्रेम देखने में एक जैसे लगते हैं, लेकिन वास्तव में दोनों एक नहीं हैं। दोनों में बहुत अंतर है।

विरह वह अवस्था है जिसमें अपने प्राणेश्वर, अपने आराध्य को पाने के लिए हृदय तड़पता है। जैसे मछली को जल से बाहर निकाल दीजिए तो वह पुनः जल में जाने के लिए प्रयासरत रहती है, क्योंकि उसका जीवन जल ही है। जल के बिना वह रह नहीं सकती। हमारा हृदय संसार में मायावी सुखों के पीछे भटकता रहता है, किंतु यदि हृदय की ऐसी अवस्था आ जाए कि वह मायावी सुखों की ओर देखना ही न चाहे, केवल परमात्मा को देखना चाहे, संसार से आँखें मूँद ले और जब उसको माया में लगाया जाए तो वह व्याकुल हो उठे तो समझना चाहिए कि अब यह अवस्था प्रेम की ओर ले जा रही है। जैसे मछली बाहर निकालने पर तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ देती है, वैसे ही जिसकी अवस्था बन जाए कि केवल परमात्मा ही चाहिए, तो इस स्थिति को लोग प्रेम कह देते हैं। वास्तव में वह प्रेम में स्थित नहीं हुआ है, प्रेम को पाने के लिए प्रयासरत है।

विरह का परिपक्व रूप प्रेम है।

वाणी कहती है – **विरहा नहीं ब्रह्मांड में, बिना सोहागिन नार।**

परमधाम की आत्माओं के अतिरिक्त संसार में कोई भी विरहनी कहला ही नहीं सकता। विरह क्या है? इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। तारतम वाणी में दृष्टांत दिया है कि यदि पतंगा दीपक के स्वरूप का वर्णन करने लगे तो वह पतंगा नहीं कहलाएगा। पतंगा वह है जो दीपक को देखते ही उस पर झाँप मारे और अपने जीवन को समाप्त कर दे, या तो दीपक को बुझा दे या स्वयं जलकर समाप्त हो जाए। जैसे पतंगा दीपक का स्वरूप नहीं समझा सकता, वैसे ही विरह में डूबी आत्मा विरह का वर्णन नहीं कर सकती।

किरन्तन में एक प्रकरण आता है - आत्म रोग। **सखी री आतम रोग बुरो लग्यो।**

आत्म रोग क्या है?

हम व्यवहार में मनो-रोग की बात सुनते हैं। शरीर के रोग सब जानते हैं। शरीर में रोग कब होते हैं? जब विजातीय पदार्थ इकट्ठे हो जाते हैं तो शरीर उन्हें निकालने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में जो चिन्ह दिखाई देते हैं, उन्हें रोग कहा जाता है। जैसे किसी को बुखार हो जाता है। पहले डॉक्टर बुखार आते ही तुरंत इंजेक्शन नहीं देते थे, क्योंकि बुखार को दबाने का अर्थ है कि भीतर का विकार बाहर नहीं निकला। यदि वह विकार बाहर न निकले तो किसी और रोग में बदल जाएगा।

उसी प्रकार मन - शुद्ध मन क्या है?

वेदों में कहा गया है कि जिसका मन शुद्ध हो जाता है, वही **ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः** कहलाता है – **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।** वह ज्ञान का समूह है। जिसका हृदय स्फटिकमणि की तरह निर्मल

हो जाए, उसके हृदय में परमात्मा के चरण कमल क्यों नहीं पड़ेंगे। लेकिन जैसे कपड़ा गंदा हो तो उसे धोने के लिए साबुन लगाते हैं। तब हमारे हाथ में गंदगी दिखती है। यदि कपड़े को ऐसे ही छोड़ दें, बिना स्पर्श किए, तो भले ही वह शरीर पर न हो, लेकिन बाद में उसका परिणाम बहुत भयानक होता है।

इसी प्रकार मन का नियंत्रण कहाँ है? संस्कारों पर। संस्कार कहाँ हैं? चित्त में। चित्त का नियंत्रण किसके पास है? बुद्धि के पास। यदि बुद्धि में विकार उत्पन्न हो जाए, तमस का प्रवेश हो जाए, अज्ञानता का अंधकार छा जाए, रजस का प्रभाव बढ़ जाए तो परिणाम यह होता है कि चित्त में छिपे रजस और तमस के संस्कार उभरने लगते हैं। तब मन विषयों की ओर इतना आकर्षित हो जाता है कि विकार ही विकार से भर जाता है। वह स्वयं यह भी नहीं समझ पाता कि मन क्या है। किसी से कोई गलती हो जाती है तो मन को फटकार लगाई जाती है। परंतु मन तो बेचारा केवल एक घटक द्रव्य है, एक कारक है। इस मन के बिना जीव कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि जीव के न तो हाथ-पैर हैं और न ही कोई अन्य साधन। जीव के पास केवल शरीर है, इंद्रियाँ हैं, अंतःकरण है। इंद्रियों और अंतःकरण के बिना जीव कुछ भी नहीं कर सकता। और जीव को यह तन क्यों मिला है? केवल परमात्मा को पाने के लिए।

जब जीव इस संसार में शरीर धारण करता है, तो यह उसका सौभाग्य होता है। संसार की हर वस्तु की एक उपयोगिता है। भारत में कचरे की समस्या से सब लोग परेशान हैं, गंदगी के ढेर लगे हैं। दिल्ली जाइए तो कचरे के पहाड़ दिखाई देते हैं। सरकार के पास भी इसका ठोस समाधान नहीं है। लेकिन चीन ने इसका उपाय निकाल लिया है, वह कचरे से बिजली बना लेता है। इसी प्रकार, जब मनुष्य संसार के दुखों को देखता है तो सोचता है कि काश हम जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाएँ और कभी शरीर धारण न करें। यह शरीर सुख और दुःख दोनों को भोगने का साधन है, किंतु यही नश्वर शरीर जब जीव को मिलता है, तो वही परमात्मा के साक्षात्कार का साधन बनता है। इसलिए कहा गया है - **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।**

अर्थात् शरीर परमात्मा के साक्षात्कार का साधन है। परंतु यही शरीर जब केवल सुख-दुःख की अनुभूति का माध्यम बन जाता है, तो हमें लगता है कि यह शरीर व्यर्थ है। इसी तरह मन भी है। यदि मन विषयों में आसक्त हो गया तो जीव को भिन्न-भिन्न योनियों में भटकाता है। और यदि यही मन निर्मल हो जाए, तो उसकी निर्मलता चित्त को भी निर्मल करती है। जिस जीव का चित्त निर्मल होता है, वही अपनी बुद्धि का वास्तविक उपयोग कर पाता है। अब देखिए, आत्म रोग का आशय क्या है? आत्मा की शुद्ध अवस्था क्या है? आत्मा का निजगुण है - प्रेम। विरह आत्मा का गुण नहीं है। यदि हम जीव भाव से समझें तो तड़पता कौन है? मन तड़पता है, क्योंकि संकल्प-विकल्प करना मन का कार्य है। मस्तिष्क तड़पता नहीं है। अंग्रेज़ी में “Mind” एक ही शब्द है, उससे मन भी ले लीजिए, मस्तिष्क भी, बुद्धि भी, चित्त भी। लेकिन भारतीय दर्शन ऐसा नहीं कहता। उसमें

अंतःकरण की प्रयोगशाला मस्तिष्क को माना है, जिसमें चित्त, मन, बुद्धि और अहंकार सभी के लिए स्थान है। मस्तिष्क स्थूल शरीर का अंग है, जबकि अंतःकरण सूक्ष्म शरीर या कारण शरीर कहलाता है। जीव द्रष्टा होकर बैठा रहता है, लेकिन वह इन सब पर आश्रित है। इंद्रियाँ जो कुछ करती हैं, वह जीव के साथ जुड़ जाता है। बेचारे जीव को इस भवसागर से पार होना है, तो वह शरीर को साधन बनाता है, इंद्रियों को साधन बनाता है, अंतःकरण को साधन बनाता है, और अंत में अपने स्वरूप में स्थित होता है।

पतंजलि योग सूत्र कहता है -

चित्तवृत्तिनिरोधः योगः। तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्त की वृत्तियाँ क्या हैं? हमारे चित्त में जितने संस्कार हैं, उनके कारण हम जो कुछ सोचते हैं, विचारते हैं, या कर्म करते हैं, वह सब वृत्तियों में आ जाता है। योग-दर्शन में कहीं चित्त और मन को एक ही माना गया है, तो कहीं अलग-अलग भी। मैं यहाँ दर्शन की गहराई में नहीं जा रहा, केवल संक्षेप में बता रहा हूँ कि इनमें ऐसी-ऐसी विशेषताएँ हैं। आत्म रोग का अर्थ यह है कि आत्मा अपने मूल स्वरूप प्रेम और आनंद की स्थिति में होनी चाहिए। उसका स्वाभाविक गुण है प्रेम और आनंद। लेकिन जब आत्मा आत्मविस्मृति में पड़ जाती है, तो वही रोग है। आत्मविस्मृति का अर्थ क्या है? यह कि परमात्मा सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है। वह **अणोऽणीयान् महतो महीयान्** है, इतना सूक्ष्म कि उससे अधिक कुछ सूक्ष्म नहीं। जो कारण-प्रकृति से भी सूक्ष्म है। उसके सामने मन, चित्त, बुद्धि तो बहुत स्थूल हैं। जब वही परमात्मा कण-कण में रम रहा है तो अलगाव का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर साक्षात्कार किसका होता है?

आप अक्सर एक चौपाई सुनते हैं -

रेहे ना सकों मैं रुहों बिना, रुहें रेहे ना सकें मुझ बिन।
जब पहचान होवे वाको, तब सहें ना बिछोहा खिन।।5।।
खिलवत प्र.15

एक बात और हम सुंदरसाथ भी कहते हैं –

हम हक में हक हम में, और हक बिना सब ख्वाब।

शब्दों का अर्थ यह है कि राज जी हमारे अंदर हैं, हम राज जी के अंदर हैं और उनके बिना सब सपना है। जब आप राज जी के अंदर हैं तो फिर चितवनी करने की क्या आवश्यकता है? जब आपके अंदर राज जी हैं तो फिर माया के विकार क्यों आपको परेशान कर रहे हैं? आप विषयों के बंधन में क्यों आ जाते हैं? चौपाई में कोई भ्रांति नहीं है, उसमें केवल सामंजस्य स्थापित करना होता है कि किस अवस्था की बात हो रही है। यही है - आत्म-विस्मृति।

मैं इसे एक लौकिक दृष्टांत से स्पष्ट करता हूँ। मान लीजिए आप घर से 1000 रुपये का नोट लेकर चले हैं, लेकिन रास्ते में बातों में खो जाते हैं। जब बाज़ार पहुँचते हैं तो भूल जाते हैं कि आप 1000 रुपये लेकर आए थे। आप दुकान पर पहुँचकर सामान ले लेते हैं, और जब दुकानदार पैसा माँगता है तो सोचते हैं - "अरे, मैं तो पैसा लाया ही नहीं।" आपका चेहरा पीला पड़ जाता है और आप सामान वापस कर देते हैं कि मेरे पास पैसा नहीं है। अब आप चिंता करते हैं कि घर कैसे लौटें। आप किसी को फोन करने या मित्र से मदद माँगने का प्रयास करते हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि आपके पास पैसा था, उससे सामान भी खरीद सकते थे और घर भी लौट सकते थे, लेकिन आपको पता ही नहीं था। यही कहानी है आत्म-विस्मृति की। आत्मा क्या है? यदि मैं आपसे पूछूँ कि आप कौन हैं? तो आप कहेंगे - "मैं परमधाम की आत्मा हूँ।" परंतु दिखाई तो शरीर देता है।

गीता में कहा गया है -

न जायते म्रियते वा विपश्चिन् नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

यह जो चैतन्य न जन्म लेता है, न मरता है। जन्म और मृत्यु तो शरीर के हैं।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

गीता में जीव की यही व्याख्या है। आत्मा तो परातम की प्रतिबिंब-स्वरूपा है।

अर्स तन का दिल जो, सो दिल देखत है हम को।
प्रतिबिंब हमारे तो कहे, जो दिल हमारे उन दिल मों।।93।।
सिनगार प्र.21

अर्स तन क्या है? वह परातम है।

अर्स तन का दिल जो, सो दिल देखत है हम को - परातम का जो दिल है, वह हमें देख रहा है। परंतु किस रूप में? परातम की नूरी नज़र सीधे नहीं देख रही, बल्कि आत्मा स्वयं को भूलकर संसार में देख रही है। इसे ऐसे समझें जैसे आप स्वप्न देखते हैं। सपने में आपको अपना मूल तन (जो वास्तविक शरीर है) नहीं दिखाई देता। मान लीजिए आप सरसावा में सो रहे हैं और आपको सपना आता है कि आप मुंबई में हैं। तब आप अपने मूल तन (जो सरसावा में है) को नहीं देख पाएँगे, बल्कि मुंबई का शरीर ही आपको दिखाई देगा। जब आप सरसावा वाले तन को देखेंगे तो सपना (मुंबई वाला तन) अदृश्य हो जाएगा। यही है आत्म-विस्मृति - अपने मूल स्वरूप को भूल जाना।

अर्स तन का दिल जो, सो दिल देखत है हमको।

अर्थात् जो हमारा दिल है, वही चेतना-शक्ति आत्मा के रूप में स्वयं को माया के संसार में देख रही है।

प्रतिबिंब हमारे तो कहे, जो दिल हमारे उन दिल मों।

आत्मा के स्वरूप को परातम का प्रतिबिंब क्यों कहा गया है, इसे एक दृष्टांत से समझिए। जो शरीर आपको स्वप्न में मुंबई में दिखाई दे रहा है, वह किसका प्रतिबिंब है? सरसावा में सोए हुए तन का। तो मुंबई का तन क्या है? सरसावा के तन का प्रतिबिंब।

यदि आपका नाम मोहन है, तो मोहन का गुण, कर्म और स्वभाव जो मुंबई में प्रकट हो रहा है, वह सरसावा में सोए मोहन जैसा ही होगा। हाँ, पूर्व संस्कारों के अनुसार स्वप्न वाला मोहन कुछ उलटी-सीधी हरकतें कर सकता है, जो सरसावा वाला मोहन नहीं कर सकता।

प्रतिबिंब हमारे तो कहे, जो दिल हमारे उन दिल मों।

हमारी आत्मा का भी दिल है, हमारे जीव का भी दिल है और हमारे परातम का भी दिल है। एक राज जी का दिल परातम के दिल के रूप में व्यक्त होता है। जब परातम का दिल खेल देखने की इच्छा करता है तो वह आत्मा के दिल के रूप में व्यक्त होता है। और जब जीव का दिल संसार के सुखों को समेटने लगता है, तो वही जीव का दिल भवसागर से पार होना चाहता है क्योंकि वह सुख और दुख दोनों को देख रहा है। जब ज्ञान का प्रकाश मिलता है, तो जीव का दिल तड़पने लगता है कि अब मुझे यह संसार नहीं चाहिए, इसमें कोई शांति नहीं है। और आत्मा, जीव पर बैठकर जीव-भाव को प्राप्त हो जाती है। जीव-भाव को प्राप्त होने का अर्थ क्या है? जैसे कहा जाता है कि संगति का असर पड़ता है। अच्छा आदमी भी बुरे की संगति में रहे तो उसमें बुरे संस्कार आने लगते हैं।

इसी प्रकार परमधाम की आत्मा संसार में आई, विकारों की दुनिया में आकर जीव पर बैठ गई और देख रही है, तो वह स्वयं को भूल गई कि "मैं परमधाम की आत्मा हूँ, मेरी परातम है।" जैसे स्वप्न में मुंबई का शरीर देख रहे हैं, तो सरसावा का तन अदृश्य हो जाता है। वैसे ही आत्मा अपनी परातम को भूल चुकी है, राज जी को भूल चुकी है, परमधाम को भूल चुकी है। उसको यह शरीर ही अपना तन लगता है, जैसा जीव मान रहा है। संगति का प्रभाव देखिए, यदि आप शराबी की संगति में रहेंगे तो देर-सवेर आप भी शराब पीने लगेंगे। झूठे व्यक्ति की संगति में रहेंगे तो आप भी झूठ बोलने लगेंगे। संगति का असर इतना गहरा होता है कि मनुष्य वैसा ही बन जाता है।

ठीक उसी प्रकार परमधाम की ब्रह्मात्मा माया के जीव की संगति में आकर जीव-भाव को प्राप्त हो गई है, और जीव शरीर की संगति में आकर शरीर-भाव को। जीव से शरीर-भाव नहीं छूटता और आत्मा से जीव-भाव नहीं छूटता। अब आत्मा को परमधाम का ज्ञान चाहिए। जब ज्ञान का प्रकाश जीव के माध्यम से मिलता है, जीव चितवनी करता है, तब जीव तड़पने लगता है और आत्मा दृष्टा होकर देखती रहती है। विरह आत्मा में नहीं आता, आत्मा के संबंध से जीव में आता है। आत्मा का गुण विरह नहीं है।

ब्रह्म-सृष्टियों के बारे में कहा गया है कि केवल वही विरह में तड़प सकती हैं।

संसार के जीव विरह नहीं कर सकते, क्योंकि उनके पास मूल संबंध नहीं है, प्रेम का पता नहीं है, परमधाम का ज्ञान नहीं है। हाँ, संसार में बड़े-बड़े विरही हुए हैं। सूफ़ी-फ़कीर पूरी-पूरी रात रोते रहे,

योगी, ऋषि, मुनि बरसों समाधि में बैठे रहे। लेकिन हम सुंदरसाथ दो-तीन घंटे भी नियमित ध्यान नहीं कर पाते। वास्तव में देखा जाए तो हमारी स्थिति इतनी गिर गई है कि हम संसार के जीवों से भी छोटी अवस्था में पहुँच गए हैं। आत्मा निज-स्वरूप में आनंदमय है। पर जब वह माया के संसार में जीव पर बैठकर जीव की दुखमय लीला को देखती है, तो उसे दुख का आभास होता है। जब जीव तारतम ज्ञान के प्रकाश में चितवनी करने लगता है और विकारों को छोड़ने लगता है, तो उसकी तड़प और बढ़ जाती है कि मैं अब तक कहाँ भटकता रहा। इसी अवस्था को कहते हैं विरह की अवस्था, और यही कहलाता है आत्म रोग।

आत्म रोग का तात्पर्य क्या है? जब आत्मा जीव के माध्यम से अंतःकरण में मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार का प्रयोग करती है, तो वह जीव के अंतःकरण के माध्यम से विकारों का दृश्य देखती है। जब वही आत्मा अब उसे छोड़कर परमधाम के आनंद को देखना चाहती है, तो जो अवस्था आती है, वही कहलाती है आत्म रोग। और इसमें क्रियाशील कौन है? जीव का हृदय, जीव का दिल। जीव का दिल क्या है? वह प्राकृतिक है, त्रिगुणात्मक है। लेकिन आत्मा का दिल प्राकृतिक नहीं है, क्योंकि वह तो परातम का हूबहू प्रतिबिंब है। अब आप सोचेंगे कि प्रतिबिंब कैसे हो सकता है। प्रतिबिंब ऐसा ही होता है, जैसे दर्पण में आप देखते हैं तो आपको अपना चेहरा दिखाई देने लगता है। तब आप कहते हैं कि मेरे चेहरे का प्रतिबिंब दर्पण में पड़ रहा है। आपने वाणी में पढ़ा है कि

कंकरी एक अर्स की, उड़ावे चौदे भवन -

परमधाम की एक कंकड़ी चौदह लोकों को उड़ा देगी। तो प्रश्न आता है कि परमधाम का प्रतिबिंब कैसे आ सकता है? यह वैसे ही है जैसे आप आंखें बंद कर लीजिए और सूर्य के बारे में सोचिए, दोपहर का चमकता हुआ सूर्य आपके मन-मस्तिष्क में प्रतिबिंबित हो जाता है। उसका कोई वजन तो नहीं होता, आकाश का सूर्य वहीं रहता है, पर उसका प्रतिबिंब मन में आ जाता है। उसी तरह परातम का प्रतिबिंब आत्मा के रूप में जीव पर बैठकर इस खेल को देखता है।

इसी संदर्भ में कहा गया है कि विरह की अवस्था को कौन जान सकता है –

विरहा गत रे जाने सोई, जो मिल के बिछुरी होए।

अर्थात जो मिलकर फिर बिछुड़ता है, वही विरह का अनुभव करता है। मैं आपको एक दृष्टांत दूँ। कालिदास की प्रसिद्ध रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुंतला की कथा आती है। शकुंतला विश्वामित्र और मेनका के संयोग से उत्पन्न हुई थी और कण्व ऋषि ने उसका पालन-पोषण पुत्री की तरह किया। जब उसका विवाह दुष्यंत से होता है और कण्व ऋषि के दो शिष्य उसे छोड़ने के लिए ले जाते हैं, तब आश्रम छोड़ते समय पूरा वातावरण दुखी हो उठता है। जिन वृक्षों को उसने अपने हाथों से सींचा था, वे भी मानो शोकाकुल हो जाते हैं। यहां तक कि तपस्वी कण्व ऋषि भी उस समय व्यथित हो जाते हैं। कालिदास ने उस क्षण का अत्यंत मार्मिक वर्णन किया है। यह वात्सल्य और स्नेह की झलक है। विरह का अनुभव मछली और जल के संबंध से भी समझाया जाता है।

मछली का जीवन जल से है, और जब उससे अलग हो जाती है तो तड़प-तड़प कर प्राण त्याग देती है। इसी प्रकार जिस प्राणी ने कभी परमात्मा की अनुभूति की पीड़ा को अनुभव ही न किया हो, वह विरह की व्यथा को कैसे समझ सकता है? इसलिए कहा गया है –

विरहा गत रे जाने सोई, जो मिल के बिछुरी होए, मेरे दुलहा,
ज्यों मीन बिछुरी जलथें, या गत जाने सोए, मेरे दुलहा।
विरहनी विलखे तलफे तारूनी, तारूनी तलफे कलपे कामनी।।1।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.6

अर्थात मछली जैसे जल के बिना जीवित नहीं रह सकती, वैसे ही विरह की अवस्था में आराध्य के बिना रहना असह्य हो जाता है, प्रियतम के बिना यह संसार अग्नि के समान कष्टदायी लगता है। एक और दृष्टांत देखिए।
वन में पक्षी अपना घोंसला बनाता है, जो उसके लिए सुखदायी होता है। परंतु यदि उस वन में आग लग जाए तो क्या होगा? पक्षी जानता है कि यदि घोंसले का मोह रखेगा तो उसी के साथ जलकर नष्ट हो जाएगा। यदि वह मोह छोड़ दे तो जीवन बच सकता है।
इसी प्रकार मनुष्य जब समझ लेता है कि यह संसार दुखमय है, जन्म-मरण का चक्र है, और अखंड सुख-शांति केवल परमात्मा में है, तब उसका मन संसार से विरक्त हो जाता है। लेकिन जिसे यह ज्ञान नहीं होता, वह संसार के लिए जीता और संसार में ही मर जाता है।
मनुष्य और पशु-पक्षियों में यही अंतर है कि मनुष्य परमात्मा का चिंतन कर सकता है, जबकि पशु-पक्षी ऐसा करने में समर्थ नहीं होते। हाँ, पशु-पक्षियों में कुछ विशेष सामर्थ्य होती है जैसे भूकंप आने से पहले कई पशु-पक्षियों को आभास हो जाता है। कुत्ते गंध से अपराधी या किसी गुप्त बात को भाँप लेते हैं। लेकिन मनुष्य को यह आभास क्यों नहीं होता? क्योंकि वह अपनी ऊर्जा को व्यर्थ के कार्यों में नष्ट करता रहता है, झूठ बोलकर, विषय-विकारों में फँसकर। पशु-पक्षी भी विषय-विकारों में फँसे होते हैं, परंतु मनुष्य अपनी बुद्धि और वाणी का दुरुपयोग अधिक करता है। यही कारण है कि यदि भूकंप आने वाला हो तो पक्षी, मछलियाँ और कुत्ते पहले जान जाते हैं, लेकिन मनुष्य अनभिज्ञ रहता है।
यदि मनुष्य को भी यह सिद्धि मिल जाए तो वह स्वयं को भविष्यवक्ता कहकर जगत को अपना अनुयायी बना ले। इसलिए मनुष्य को इतनी छूट नहीं दी गई।
किंतु यदि वह अपने को संयमित कर ले, तो परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है, यह सामर्थ्य पशु-पक्षियों में नहीं होती। महामति जी की आत्मा ने सुंदरसाथ के लिए विरह का द्वार खोला है, क्योंकि

दुखतें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इस्क।
इस्क प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक।।16।।
किरन्तन प्र.17

अर्थात दुख से विरह उत्पन्न होता है। कैसा दुख? दुख तो सबको होता है। यहाँ जितने सुंदरसाथ बैठे हैं, कोई यह नहीं कह सकता कि उसे जीवन में कभी दुख न हुआ हो। रोग का दुख होता है, आर्थिक अभाव का दुख होता है, किसी प्रिय के वियोग का दुख होता है, किसी न किसी रूप में अभाव हमें ग्रसित करता ही रहता है। इसलिए संसार में दुख सबको होता है। लेकिन दुख से केवल विवेकवान ही शिक्षा ग्रहण करता है। ठोकर तो सबको लगती है, पर ठोकर से जो सीख लेता है वही समझदार कहलाता है। संसार का प्रवाह ऐसा है कि आंख मूंदकर चलता चला जा रहा है
– **पुनरपि जननं पुनरपि मरणं।** माता के गर्भ में आते हुए न जाने कितने लाखों जन्म बीत गए, पर जीव पुनः वासनाओं से ग्रसित होकर उसी योनि में चला जाता है। वह जानता है कि जन्म का भी कष्ट है, मृत्यु का भी कष्ट है, वृद्धावस्था का भी कष्ट है, रोग का भी कष्ट है, फिर भी कष्टों में रहना चाहता है। कष्टों से पार होकर सर्वशक्तिमान प्राणेश्वर को हृदय में बसाने का विवेक केवल किसी-किसी में होता है। महामति जी की आत्मा कहती है –
बिछरो तेरो वल्लभा, सो क्यों सहे सुहागिन।
अर्थात प्रीतम से वियोग कोई भी सुहागिन सहन नहीं कर सकती। सुहागिन किसे कहते हैं? जिसका सुहाग हो। सुहाग का तात्पर्य क्या है? लौकिक दृष्टि से देखें तो एक स्त्री का प्रिय उसका पति है। इस दृष्टांत से समझिए - पति-पत्नी के बीच शारीरिक आकर्षण होता है, कुछ हृदय का भी आकर्षण होता है। वृद्धावस्था में यदि आत्मीय स्नेह है, तो आकर्षण बना रहता है, नहीं तो पति-पत्नी एक-दूसरे को बोझ समझने लगते हैं। क्योंकि यह स्वार्थ की दुनिया है। पर जब हृदय का आकर्षण होता है तो पत्नी कहती है - "पति मेरा सुहाग है।" सुहाग का तात्पर्य है - मेरा सर्वस्व। यही भाषा यहाँ प्रयुक्त है।
कलश हिंदुस्तानी में सुहागनियों के लक्षण का वर्णन आता है – **सोहागनियों पिया गुण केते कहूं।**

पार वतन जो सोहागनी, ताकी नेक कहूं पेहेचान।
जो कदी भूली वतन, तो भी नजर तहां निदान।।1।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.11

सुहागनियों के लक्षणों में अनेक बातें कही गई हैं - अटूट विश्वास, अटूट समर्पण, अटूट श्रद्धा और अटूट प्रेम।

ईश्वरीय सृष्टि में क्या होता है? श्रद्धा होती है, विश्वास होता है, कुछ समर्पण भी होता है, लेकिन अटूट प्रेम नहीं होता। वहाँ भक्ति और बंदगी होती है, आराध्य को मानकर पूजा होती है। ब्रह्म सृष्टि के प्रेम और ईश्वरीय सृष्टि के प्रेम में अंतर है। ब्रह्म सृष्टि स्वयं को मिटा देती है, जबकि ईश्वरीय सृष्टि अपना अस्तित्व बनाए रखते हुए प्रार्थना और उपासना करती है। और जीव सृष्टि में तो विश्वास भी ढीला-ढाला होता है, श्रद्धा भी अस्थिर होती है, समर्पण तो होता ही नहीं। थोड़ी देर प्रार्थना कर लेती है और फिर हिसाब-किताब मांगने लगती है - **"हमने इतनी प्रार्थना की है, हमें कुछ चाहिए।"** यहाँ प्रेम का भाव नहीं होता। बिछरो तेरो वल्लभा, सो क्यों सहे सुहागिन।

परमधाम की आत्मा यह कभी सहन नहीं कर सकती कि उसका अपने प्रीतम से वियोग हो। वियोग किसे कहते हैं? योग की परिभाषा दी गई है – संयोगो योग इत्युच्यते जीवात्मना परमात्मना।

अर्थात जीवात्मा का परमात्मा से मिलन योग कहलाता है। अब प्रश्न यह है कि जो परमात्मा एकरस और व्यापक है, उसका योग होना कठिन क्यों कहा गया है? दर्शन शास्त्र में अनेक युक्तियाँ दी जाती हैं, एक-दूसरे के विचारों का खंडन किया जाता है, क्योंकि यह सब बुद्धि का खेल है। परंतु एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जहाँ सारे तर्क-वितर्क समाप्त हो जाते हैं और बुद्धि से सोचना बंद हो जाता है।

शास्त्र में कहा है – **बुद्ध्या अविशेषिता आत्मा परमां गतिं।**

परम गति किसे कहते हैं? जहाँ बुद्धि का कोई कार्य नहीं रह जाता। जब तक बुद्धि की दौड़ है, विद्वान लोग इकट्ठे होकर कहते हैं कि मैंने अधिक पढ़ा है, मेरा तर्क सही है। किंतु बुद्धि से सत्य का अंतिम निर्णय नहीं होता, यद्यपि बुद्धि आवश्यक है। अंधश्रद्धा कब हानिकारक होती है? जब बुद्धि का तनिक भी प्रयोग न हो। किसी भी वस्तु की अति हानिकारक होती है। हमारे पास होना चाहिए - ऋतंबरा प्रज्ञा, अर्थात यथार्थ सत्य को ग्रहण करने वाली बुद्धि। यह ऋतंबरा प्रज्ञा किसे प्राप्त होती है? जो संप्रज्ञात समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है।

इतिहास में देखिए शकुनी बहुत बुद्धिमान था, किंतु मूर्ख भी था। रावण महान पंडित था, पर पंडित होते हुए भी ज्ञानी नहीं था। जिसने पराई स्त्री का हरण किया और कहा कि मैं उसे लौटाऊँगा नहीं, उसे मूर्ख ही कहा जाएगा। कौआ चतुर होता है, पर विष्ठा खाने से स्वयं को रोक नहीं पाता। शकुनी अपनी जिद्द में महाभारत का युद्ध करा बैठा, यह कुबुद्धि का उदाहरण है। विवेक क्या है? बुद्धि का वास्तविक और धर्मसम्मत प्रयोग। मनुष्य को बुद्धि इसलिए मिली है कि वह धर्मग्रंथों का अध्ययन करे, सार तत्व को पहचाने, परमात्मा के विषय में आधारभूत मार्ग बनाए, जिस पर ध्यान द्वारा सुदृढ़ मार्ग बनाकर परम तत्व को प्राप्त कर सके। अपनी आत्मा के भीतर जो अंतर्यामी परमात्मा विद्यमान है, उसका साक्षात्कार कर सके। इसलिए बुद्धि का उचित उपयोग है। परंतु यदि लौकिक बुद्धि को ही सब कुछ मान लिया जाए, ऋतंबरा प्रज्ञा की प्राप्ति न की जाए और समाधि में अपने

स्वरूप में स्थित न हुआ जाए, तो आत्मा का यथार्थ स्वरूप कभी प्रकट नहीं हो सकता। इसीलिए महामति जी की आत्मा ने सुंदरसाथ के कल्याणार्थ विरह की उस अवस्था का वर्णन किया है, जिसमें शरीर कोई साधना नहीं कर पाता।

विरहा ना देवे बैठने, उठने भी ना दे।
लोट-पोट भी ना कर सके, हूक-हूक स्वांस ले।।10।।
कलश हिंदुस्तानी, प्र.5

विरह की अवस्था क्या है? एक सामान्य व्यक्ति माला जप सकता है, पूजा-पाठ कर सकता है, परिक्रमा कर सकता है। लेकिन विरह की अवस्था में इनमें से कुछ भी संभव नहीं होता, न पूजा-पाठ, न परिक्रमा, न स्तुति। इसीलिए कहा है –
विरहा ना देवे बैठने, उठने भी ना दे।
लोट-पोट भी ना कर सके, हूक-हूक स्वांस ले।
हूक-हूक स्वांस लेने का तात्पर्य क्या है? जब हर श्वास में ऐसा प्रतीत हो कि यदि प्रीतम नहीं आए, प्रीतम का दर्शन न हुआ तो प्राण ही निकल जाएंगे।आपने हब्से में इंद्रावती जी का विरह पढ़ा है? हमने केवल शब्दों से उसे जाना है। परंतु उस अवस्था को हम सुंदरसाथ में से कोई भी अनुभव नहीं कर पाया है। उस मिहिरराज के विरह को वही समझ सकता है, जिसने हब्से में उनके समान पीड़ा भोगी हो।देखिए, श्री मिहिरराज के तन द्वारा अपने प्रीतम के साक्षात्कार की तीन अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था - अरब जाने से पहले की। संवत 1703 में श्री मिहिरराज अरब जाते हैं। उससे पहले, विक्रम संवत 1700 में बड़े भाई गोवर्धन का देह त्याग हो जाता है। उस समय मिहिरराज को सारा संसार अंधकारमय लगने लगता है। यद्यपि उनके पास तारतम ज्ञान का प्रकाश है, पर वे कसनी पर उतर आते हैं। कसनी पर उतरने का तात्पर्य है - शरीर को कष्ट-साध्य साधनाओं से गुजारना। **उतरते आहार घटाइया** बीतक में चौपाई आती है। आहार की मात्रा इतनी घटा देते हैं कि केवल पैसे भर वजन का आहार ग्रहण करते हैं। राजकुमार सिद्धार्थ ने तो इससे भी कठोर साधना की थी। प्रतिदिन केवल एक दाना अन्न का सेवन करते थे। परिणाम यह होता है कि शरीर हड्डियों का ढाँचा बन जाता है, पेट पीठ से चिपक जाता है, ऐसा लगता है मानो शरीर पर चमड़ा ही नहीं है। शरीर को छूने पर प्रतीत होता है कि मांस फट जाएगा। यही अवस्था राजकुमार सिद्धार्थ के शरीर की हुई थी। इसे कहते हैं – कष्ट-साध्य साधना। लेकिन अंततोगत्वा मिहिरराज को प्रीतम का पूर्ण दर्शन नहीं होता। बीतक में चौपाई आती है – **अपना आपा देखिया, किया आकार को रद।**
अपना आपा देखिया का तात्पर्य है कि उस विरहावस्था में रहते हुए उन्हें अपनी परातम की झलक तो मिल गई, पर पूर्ण साक्षात्कार नहीं हुआ। क्योंकि परातम के पूर्ण साक्षात्कार के लिए राज जी

का दर्शन होना आवश्यक है। श्रृंगार के चौथे प्रकरण में कहा गया है - जो तूं देखें हक नैन को, तो खुले रुह के नैन। राज जी के नेत्रों का दर्शन होगा तो आपको अपनी परातम के नेत्रों का दर्शन होगा और आपको अपनी आत्मा के भी नेत्रों का दर्शन होगा।

दूसरी अवस्था - हब्से की। यहाँ मिहिरराज के भीतर एक तीव्र टीस और पीड़ा है कि मैं तो निर्दोष था, सुंदरसाथ की सेवा करना चाहता था, राजा का धन मैंने नहीं लिया, फिर भी मुझे बंदीगृह में रखा गया है। उस समय उनके मुख से यही शब्द निकलते हैं – आपोपूं जोलो नाखिए आंख मीची, त्यारे तमने आवे सरम।

अर्थात, हे प्रीतम! अब आपको मेरे सामने आना ही पड़ेगा। यही टीस इतनी प्रचंड पीड़ा का रूप ले लेती है कि लगता है यदि आप नहीं आए, तो मैं शरीर त्याग दूँगा। उस अवस्था में भोजन की ओर ध्यान ही नहीं रहता, कितना खाया, कितना नहीं, इसका भान ही नहीं होता ।

तीसरी अवस्था - संवत 1748 की। जब मारिफ़त सागर की वाणी अवतरित होती है। हब्सा से पहले वे श्री मिहिरराज हैं, और मारिफ़त सागर के अवतरित होने के बाद वे श्री महामति जी हैं। उस समय वे गुम्मट जी की गुमटी में ध्यानावस्थित होते हैं। यह ध्यान की प्रक्रिया पूरी तरह वैज्ञानिक है। अब देखिए - विरह क्या है? वाणी कहती है -

विरहा ना देवे बैठने, उठने भी ना दे।
लोट-पोट भी ना कर सके, हूक-हूक स्वांस ले।।

जब न बैठा जा सके, न उठा जा सके, न लोट-पोट हुआ जा सके, तब केवल हूक-हूक कर श्वास चलती है, मानो अब प्राण निकल जाएंगे। यह विरह की अंतिम अवस्था है। पुराण संहिता में विरह की दस अवस्थाओं का वर्णन है, पर केवल नौ ही लिखी गई हैं। अंतिम अवस्था का वर्णन नहीं है, क्योंकि उसमें प्राण ही शरीर में नहीं रहते। मिहिरराज ने वही किया।

पहली अवस्था में शरीर को सुखाया। दूसरी अवस्था में हब्से में आर-पार की लड़ाई लड़ी। यह विरह तामस का प्रकरण है कि या तो दीदार दो, नहीं तो मैं शरीर छोड़ दूँगा। जब जीव को जैसी पीड़ा मिलती है, वैसे ही वह कार्य करता है। लेकिन मिहिरराज का अब वही जीव, वही शरीर, वही इंद्रियाँ और वही अंतःकरण परंतु अंतर यह है कि अब उस तन में युगल स्वरूप अपनी पाँचों शक्तियों सहित पूर्णतया विराजमान हैं। संपूर्ण सुंदरसाथ उन्हें अक्षरातीत का स्वरूप मानता है। राज जी का दर्शन हो चुका है, 25 पक्षों का वर्णन उसी तन से हो चुका है, नख से शिख तक युगल स्वरूप की शोभा का वर्णन हो चुका है। उस तन को अब चितवनी की आवश्यकता नहीं। परंतु सुंदरसाथ के लिए, भविष्य में उन्हें मार्गदर्शन देने के लिए, ताकि वे भटकें नहीं, महामति जी ने यह मार्ग दिखाया। सबको यह समझना चाहिए कि विरह की वह अवस्था, जिसमें न उठ सकें, न बैठ सकें, न लोट-पोट कर सकें, हँसना-रोना सब कुछ छूट जाए, वह अवस्था हर कोई प्राप्त नहीं कर सकता। लेकिन एक सुनियोजित ज्ञानमय मार्ग का अवलंबन सबके लिए संभव है। अर्थात हमें इस शरीर को साधन

बनाना है, उसका प्रयोग करना है, पर शरीर से परे हो जाना है।
चितवनि के जो भी शिविर लगे हैं, उनमें मैंने कहा है कि आपकी पहली साधना है - शरीर से परे होना। इसलिए स्थिर होकर इस प्रकार बैठिए कि कुछ समय पश्चात आप अपने शरीर को भूल जाएँ। शरीर हिले-डुले नहीं, जिह्वा और होंठ न हिलें। प्रारंभ में तारतम का जप केवल दो बार कीजिए। ध्यान के समय यदि आप बार-बार तारतम का जप करेंगे तो ध्यान स्थिर नहीं होगा, क्योंकि जप मन और वाणी का विषय है, चित्त का नहीं। दो बार जप करने से मन शांत हो जाता है। फिर अपनी अंतर्दृष्टि को खोलने का प्रयास कीजिए। जब अंतर्दृष्टि खुलने लगती है तो परिणाम यह होता है कि होंठ स्वतः बंद हो जाते हैं, जिह्वा हिलती-डुलती नहीं, और मन में कोई विचारधारा नहीं आती। इसे कहते हैं - निर्विचार समाधि।
योगदर्शन के सिद्धांत के अनुसार – वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञातः सवितर्क और निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार समाधि की अवस्थाएँ हैं। जिस समाधि में विचार-शून्यता हो जाती है, वह निर्विचार समाधि कहलाती है, और उसमें आनंद का अनुभव होता है। सुंदरसाथ कहते हैं कि हम तो चलते-फिरते चितवनी कर लेते हैं। परंतु चलते-फिरते जो होता है, वह केवल भाव-लीनता है, चितवनी नहीं। चितवनी में जप भी नहीं चलेगा, यहाँ तक कि राज-श्यामा का जप भी नहीं। हाँ, जप की प्रारंभिक भूमिका आपके मन को पवित्र करती है। चितवनी का तात्पर्य है - इतना स्थिर होकर बैठना कि आप शरीर से परे हो जाएँ। जब शोभा का चिंतन बुद्धि द्वारा अंतःकरण तक पहुँचता है यानि आपने जो कुछ राज जी और श्यामा जी के श्रृंगार को ग्रहण किया है, उसे अंतःकरण में उतारते हैं तो आपकी आस्था परिपक्व होने लगती है।
वाणी कहती है – **ज्यों-ज्यों होवे अर्स नजीक, खेल त्यों-त्यों होवे दूर।**
अर्थात जैसे-जैसे राज श्यामा जी की शोभा और 25 पक्ष आपके भीतर बसने लगते हैं, संसार आपसे दूर होने लगता है। यानी आप शरीर से परे, मन-बुद्धि से परे होने लगते हैं। इसके बाद की अवस्था आती है विरह और प्रेम की।
प्रेम किसे कहेंगे? प्रेम वह है जिसमें केवल राज जी का ही स्वरूप लक्षित हो जाए और अन्य कोई चाहत शेष न रहे। यदि कोई नारियल या भोग-प्रसाद चढ़ाकर राज जी से कुछ माँग बैठता है, तो वह व्यापार हुआ, प्रेम नहीं। प्रेम का अर्थ है स्वयं को पूर्णतया समर्पित कर देना। प्रेम करने वाला कभी यह नहीं सोचता कि हमने कुछ किया है तो उसके बदले कुछ मिलना चाहिए। कुछ के बदले कुछ मिलना संसार का व्यवहार है, लोक व्यवहार है, किंतु प्रेम नहीं। इस प्रकरण के बाद आने वाले प्रकरण में प्रेम से संबंधित विशेष चौपाइयाँ आती हैं –

चौदे तबक हिसाब में, हिसाब निरंजन सुंन।
न्यारा इस्क हिसाब थें, जिन देख्या पिउ वतन।।2।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.7

इस्क बड़ा रे सबन में, ना कोई इस्क समान।
एक तेरे इस्क बिना, उड़ गई सब जहान।।1।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.7

परंतु ध्यान रहे कि प्रेम की अवस्था विरह के पश्चात ही आती है। **दुख थे विरह उपजे, विरह प्रेम इस्क।** जब विरह की अंतिम चोटी पर पहुँचा जाता है, तब हृदय में प्रेम जाग्रत होता है। विरह क्या है? वह अवस्था जिसमें हृदय प्रीतम के लिए इतना तड़पता है कि संसार को देखना भी नहीं चाहता। सामान्य भाषा में लोग कहते हैं कि इन्हें राज जी से प्रेम हो गया है। पर वास्तव में यह प्रेम नहीं है, बल्कि प्रेम की मंज़िल तक पहुँचने की दौड़ का प्रारंभ है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति पुस्तक लेकर बैठा रहता है और उसमें आँखें गड़ाए रहता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह विद्वान हो गया। हाँ, वह विद्वान बनने की राह पर है, ग्रंथों का अध्ययन कर रहा है, इसलिए एक दिन विद्वान अवश्य हो जाएगा। उसी प्रकार, जो विरह की अवस्था में चलता है, वह माना जाता है कि एक दिन प्रेम की अवस्था को प्राप्त करेगा। ऐसा नहीं कि थोड़े समय विरह में डूब जाने से कोई तुरंत प्रेममय हो जाए। प्रेम तो अक्षरातीत के हृदय की अखंड संपदा है। **प्रेम बसे पिया के चित।** प्रेम अक्षरातीत के हृदय में ही बसता है। प्रेम का स्वरूप और अक्षरातीत का स्वरूप अभिन्न हैं। **प्रेम ब्रह्म दोऊ एक हैं, सो दोऊ दुनी में नाहें।**
अर्थात, जो प्रेम है वही परब्रह्म है। इस संसार में यदि कोई विरह में कुछ घंटे बिता ले, तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह प्रेम के स्वरूप को पा गया। प्रेम शब्दातीत है और अंतःकरण का विषय है। जब शुद्ध ज्ञान का प्रकाश अंतःकरण में प्रवेश करता है तो वह विश्वास जगाता है, और विश्वास के परिणामस्वरूप विरह उत्पन्न होता है। विरह की परिपक्व अवस्था ही प्रेम है। जैसे धारणा की परिपक्व अवस्था ध्यान है, ध्यान की परिपक्व अवस्था समाधि है और समाधि की परिपक्व अवस्था है राज जी में ओत-प्रोत हो जाना, जहाँ दोनों एक रूप हो जाते हैं।

बिछरो तेरो वल्लभा, सो क्यों सहे सुहागिन।
तुम बिना पिंड ब्रह्मांड, हो गई सब अगिन।।2।।
सनंध प्र.8

महामति जी की आत्मा सब सुंदरसाथ के लिए सिखापन देते हुए कहती है कि हे प्रियतम! तुम्हारे बिना पिंड और ब्रह्मांड सब अग्नि समान प्रतीत होते हैं। विरह की अवस्था में ऐसा लगता है मानो यह शरीर और संसार सब व्यर्थ हो गया हो, कुछ अच्छा नहीं लगता। उसमें कोई औपचारिकता नहीं निभाई जाती।

बीतक में देवचंद्र जी के प्रारंभिक समय की विरह अवस्था देखिए। जीवन का एक स्वर्णिम काल होता है किशोरावस्था। इस अवस्था में हर प्राणी, चाहे किसी भी योनि का हो, सबसे सुंदर और भावनाओं में कोमल होता है। किशोरावस्था में ही वैराग्य, भक्ति और संसार के संस्कार उभरते हैं। अपने संस्कारों के अनुसार कोई माया में लिप्त हो जाता है, तो कोई भक्ति में। प्रत्येक मानव के जीवन में किशोरावस्था में कुछ क्षण अवश्य आते हैं जब वैराग्य का अनुभव होता है। हर महापुरुष के जीवन में यह देखा जा सकता है। जो बाद में गृहस्थ बन गए, उनमें भी उस काल में वैराग्य के संस्कार प्रकट हुए थे। उदाहरण के लिए, सुभाषचंद्र बोस भी कुछ समय के लिए हिमालय गए थे, किंतु पुनः लौटकर देश में क्रांति का बीज बोया। मेरे कहने का आशय यह है कि हर हृदय में एक चेतना विद्यमान है, और वह चेतना अपने अंतर्यामी सर्वशक्तिमान को पाना चाहती है। किंतु उसके सामने अंतःकरण का घेरा है, जो शरीर और इंद्रियों के बंधन में है। शरीर मिला है परमात्मा को पाने के लिए, लेकिन साधन माया के मिले हैं, और इन्हीं माया के साधनों से हमें माया से परे होना है।

काजल की कोठरी में, कैसे रहो सुथार।
एक लीक काजल की, लागै ही लागै बार॥

काजल की कोठरी में यदि खड़े हो जाएँ तो चाहे कितना भी बचाएँ, कहीं न कहीं कालिख लग ही जाती है। उसी प्रकार हमारा मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार सब माया से बने हैं। जब रजोगुण और तमोगुण प्रबल होते हैं, तो बुरे संस्कारों की दौड़ शुरू हो जाती है और भक्ति से मन हट जाता है। किसी भी महापुरुष या परमहंस को देखिए, वे कभी ठूस-ठूस कर भोजन नहीं करते। क्यों? क्योंकि उन्हें भय रहता है कि यदि उनकी सफेद चादर पर थोड़ी भी कालिमा पड़ गई तो सबको दिखाई देगी। इसका अर्थ यह नहीं कि वे उसी क्षण पाप करेंगे, बल्कि उनके मन में यह भाव रहता है कि यदि इतने घंटे ध्यान करने के बाद भी बुरे विचार मन में आ गए, चाहे कर्म न भी किया हो, तो भी मन दूषित हो गया। इसी कारण हर परमहंस का भोजन नपा-तुला और सात्विक होता है। वे किसी भी प्रकार से रज और तम के संस्कारों को पनपने नहीं देते। यदि हमने आवश्यकता से अधिक भोजन कर लिया तो आलस्य और प्रमाद हमें घेर लेते हैं। आलस्य बढ़ने पर मनोविकार प्रकट न भी हों तो भी वे हमें व्यथित अवश्य करते हैं। इसलिए रज और तम के संस्कारों से स्वयं को बचाना आवश्यक है। यहाँ तक कि हमें स्मृति भी न रहे कि पाप क्या होता है। हमारी स्मृति केवल परातम स्वरूप और परमधाम की होनी चाहिए। इसीलिए कहा गया है –

विरहा जाने विरहनी, वाके आग न अंदर समाए।

विरह की अवस्था को कौन जान सकता है? केवल वही आत्मा जो परमधाम की विरहनी है, वही जानती है कि विरह का असली स्वरूप क्या है।

जैसे दो व्यक्ति हों - एक ने योग दर्शन को पूरी तरह कंठस्थ कर लिया, सभी 198 सूत्र याद कर लिए। दूसरा व्यक्ति सूत्र कंठस्थ नहीं कर पाया, पर उन्हें आचरण में उतार रहा है। जब पहले से पूछा

जाएगा तो वह सूत्र बोल देगा – ध्यानं निरविष्ययमनसः और उसकी व्याख्या भी कर देगा। किंतु जो भुक्तभोगी है, वही बताएगा कि ध्यान का वास्तविक अनुभव क्या है, समाधि का स्वरूप कैसा होता है।

एक ऋषि थे, उनके दो पुत्र थे। एक पुत्र को उन्होंने कहा - जाओ, गुरुकुल में वेद-शास्त्रों का अध्ययन करो। दूसरे को भेजा - जाओ, वन में तप करो, ध्यान-समाधि का आश्रय लेकर परमात्मा की खोज करो। बारह वर्ष के पश्चात दोनों लौटकर आते हैं। पहले पुत्र से पूछा गया, जो गुरुकुल में रहकर वेद-शास्त्रों का अध्ययन कर रहा था - "परमात्मा का तुमने क्या अनुभव किया?" वह धारा-प्रवाह वेदमंत्रों का उच्चारण करने लगा - "परमात्मा ऐसा है, परमात्मा वैसा है।" यह सुनकर ऋषि मौन हो गए। फिर दूसरे पुत्र से पूछा गया - "पुत्र, तुमने क्या अनुभव किया?" उसने कहा - "पिताश्री, यह तो गूँगे का गुड़ है, मैं क्या बताऊँ। जहां वाणी की गति नहीं है, उस परमात्मा के स्वरूप का वर्णन मैं नहीं कर सकता।" विरह की अवस्था भी ऐसी ही है।

विरहा जाने विरहनी, वाके आग ना अंदर समाए।
सो झालां बाहेर पड़ी, तिन दियो वैराट लगाए।।3।।
सनंध प्र.8

विरहनी के अंतःकरण में जो विरह की ज्वाला धधक रही होती है, यदि वह थोड़ी-सी बाहर आ जाए तो संसार में आग लग जाएगी। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे किसी व्यक्ति से आपको घृणा हो और उसे देखना भी न चाहें, फिर वह बार-बार सामने पड़ जाए, तो आप कहते हैं कि इसे देखते ही तन-मन में आग लग जाती है। यही स्थिति विरह की है। जब उसका आभास होता है और विरह में डूब जाते हैं, तो संपूर्ण संसार अग्निमय प्रतीत होता है। चाहे सोने-हीरे-मोती से सजा हुआ घर हो, वह भी अच्छा नहीं लगता। **रतन जड़ित जो मंदिर, सो उठ उठ खाने धाए।**

आप देखते हैं कि आश्रमों में भी झगड़े होते हैं। बड़े-बड़े महाराज भी कोर्ट तक पहुंच जाते हैं, किस लिए? "हमारे अधीन इतने आश्रम हों।" सुंदरसाथ जब एक सप्ताह के लिए आता है, तो वह भी जगह के लिए झगड़ पड़ता है कोई गद्दे के लिए, कोई आसन के लिए। सब नश्वर है इस संसार में। हमारा शरीर भी नश्वर है, किंतु इस शरीर को खिलाने-पिलाने में यदि थोड़ी-सी भी चूक हो जाए, जैसे यदि मैं कह दूँ कि दो दिन भोजन में नमक नहीं मिलेगा तो आधे लोग कहेंगे, "सरसावा जाकर क्या लाभ, वहां तो नमक ही नहीं मिलता।" नमक है तो सब ठीक, और नमक अधिक हो जाए तो भोजन अखाद्य हो जाएगा; किंतु उसके बिना गुज़ारा भी नहीं। यही संसार की प्रवृत्ति है। संसार में रहना है तो जीवन कैसा हो? संसार में रहें, लेकिन संसार के होकर न रहें। कमल का फूल जल में खिलता है, पर जल उसे डुबो नहीं सकता। उसी प्रकार, भले ही शरीर माया का बना है,

हमें चितवनी में इतना डूबना चाहिए कि शरीर से भी परे हो जाएं, मन-बुद्धि के धरातल से भी ऊपर उठ जाएं, और विरह से गुजरकर प्रियतम को प्राप्त कर लें। यदि ऐसा नहीं करते, तो विरह की अनुभूति नहीं होती। केवल कर्मकांडों में भटकते रहते हैं और उसी में सुख मानते रहते हैं - "इतनी पूजा कर ली, इतनी परिक्रमा कर ली, इतनी सेवा कर ली।" दूसरों को बताते रहते हैं और खुश होते रहते हैं, किंतु आत्मिक उपलब्धि कोई विशेष नहीं होती।
विरह का यह प्रकरण सुंदरसाथ के लिए परमधाम का द्वार खोलने वाला है। इसलिए ब्रह्म-सृष्टियों के लिए कहा गया है कि विरह की शोभा उन्हीं को प्राप्त है।

विरहा नहीं ब्रह्मांड में, बिना सोहागिन नार।
सोहागिन आतम पिउ की, वतन पार के पार।।23।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.9

अर्थात, जो प्रियतम की आत्माएं हैं, जिनका मूल घर निराकार के पार के पार है, विरह के मार्ग पर चलती हैं। संसार तो शरीयत और तरीकत को ही सब कुछ मान बैठा है और उसी को अंतिम उपलब्धि समझकर शांत हो जाता है। किंतु परमधाम की प्रत्येक ब्रह्मात्मा का उत्तरदायित्व है कि राज जी को पाने के लिए, उनके दीदार के लिए, अपने हृदय के मन-मंदिर के सिंहासन पर राज जी को बिठाने के लिए चितवनी का मार्ग अपनाए। इसी से वह धीरे-धीरे विरह के मार्ग पर चल सकेगी और प्रेम में डूबकर राज जी को पा सकेगी।

ल्याओ प्यार करो दीदार

क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।
ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन।।

।। प्रणाम जी ।।

श्री खिलवत
इत मैं बीच काहू में नहीं
श्री प्राणनाथ जी वाणी
॥ प्रेम खोल देवे सब द्वार ॥

एह करत सब हुकम, ले अव्वल से आखिर।

प्राणेश्वर अक्षरातीत खिलवत की इस वाणी में अपने स्वरूप की पहचान दे रहे हैं। खिलवत क्या है? अक्षरातीत का हृदय ही खिलवत है। सामान्य तौर पर खिलवत से आशय लिया जाता है कि मूल मिलावा, हकीकत की दृष्टि से मूल मिलावा को खिलवत कहिए, पांचवी भूमिका को खिलवत कहिए। बातूनी रूप से, मारिफ़त की दृष्टि से जो परम सत्य है वह यह कहता है कि पूरा परमधाम क्या है? अक्षरातीत के दिल से है। परमधाम में कभी पल भर की भी जुदायगी नहीं होती इसलिए पूरा परमधाम ही खिलवत है। हृदय ही वह खिलवत है जिसमें आशिक और उसका मासूक बसा होता है। चौपाई है-

एह करत सब हुकम, ले अव्वल से आखिर। जब यह बात आती है, तो पुरानी पीढ़ी के जो सुंदरसाथ हैं, वह मानते हैं कि आमतौर पर हुक्म कोई अलग शक्ति है। हुक्म की वास्तविकता को समझिए, जैसे कि मैंने अभी कहा पुरानी पीढ़ी के सुंदरसाथ, जो मंदिरों में जयकारा लगाते हैं तो पहला जयकारा क्या होता है, कृष्ण कन्हैया लाल की जय, उसके बाद रास के रमैया की जय, उसके पश्चात हुक्म के स्वरूप की जय, उनको कहिए कि एक ही लगाइए तो नाराज हो जाएंगे कि एक को कैसे छोड़े, मन में भय होता है कि एक को छोड़ देंगे तो नाराज हो जाएंगे, हमारे ऊपर से मेहर हट जाएगी। बृज में जिसने लीला की, वही तो रास में लीला करने वाला है।

तहां रास लीला कर के, आए बरारब स्याम।
त्रेसठ बरस तहां रहे, वायदा किया इस ठाम।।84।।
बीतक प्र.71

बसरी सूरत के रूप में आने वाला भी वही है, वही अक्षर की आत्मा है, लेकिन तीनों का जयकारा बोलेंगे। स्वरूप एक है, रूप तीन है। बसरी स्वरूप को क्या कहेंगे? हुक्म का स्वरूप लेकिन जानते हैं, हुक्म के बिना तो कुछ होता ही नहीं।

यजुर्वेद का एक मंत्र है- **यस्मात् न ऋते किंचन कर्म कृते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।** आपसे मैं पूछूं कि आप पानी क्यों पीते हैं? आप क्या बोलेंगे, मेरे मन में इच्छा होती है। क्या आपके मन में संकल्प हुए बिना, इच्छा हुए बिना, पानी पी सकते हैं? नहीं। चर्चा में कई बार इस दृष्टांत को दिया है कि जनक जी ने कहा था कि घोड़े पर चढ़ने में जितना समय लगता है, मुझे उतने समय के अंदर ब्रह्मज्ञान चाहिए। अष्टावक्र ने कहा था कि तुम्हें मिल जाएगा जनक लेकिन मुझे दक्षिणा चाहिए और दक्षिणा में मुझे तुम्हारा मन चाहिए और यह कह करके चल देते हैं। जनक सोचते हैं कि मैंने तो मन दे दिया, जिस मन को दे दिया गया, उस मन से सोचने का अधिकार तो होता नहीं। परिणाम

क्या होता है? तीन दिन तीन रात तक जनक बैठे रहते हैं, मन का संकल्प विकल्प समाप्त होते ही निर्बीज समाधि की अवस्था में पहुंच जाते हैं और जिस सत्य को जानना होता है वह जान जाते हैं। संसार का सारा व्यवहार किससे चलता है? मन से। मन की इच्छा ही कार्य को जन्म देती है, इंद्रियों और शरीर के संयोग से कार्य का संपादन होता है, जिससे संसार का व्यवहार चलता है। यही प्रवृत्ति परमधाम में भी है।

हकें किया हुकम वतन में, सो उपजत अंग असल।
जैसा देखत सुपन में, ए जो बरतत इत नकल।।37।।
खिलवत प्र.5

राज जी जो परमधाम में इच्छा करते हैं उसी के अनुसार तो सब कुछ होगा, इसलिए परमधाम की सारी लीला भी हुक्म से होती है, उनके दिल की इच्छा से होती है। हुक्म और इच्छा में थोड़ा सा अंतर होता है। अंतर कुछ नहीं, स्वरूप में कुछ अंतर नहीं, केवल कहने के ढंग में अंतर होता है। जैसे कोई बहुत बड़ा अधिकारी है, अपने कार्यालय में बैठा है,उसको प्यास लगती है, अपने कर्मचारी को कहेगा कि एक गिलास पानी लाओ। जब वह पानी लाने जाएगा तो दूसरे अपने सहयोगी से कहेगा कि साहेब का हुक्म है कि एक गिलास पानी लाओ। घर पर वही अधिकारी आता है। पत्नी से कहता है कि प्यास लगी है, एक गिलास पानी लाओ, पत्नी बच्चों से क्या कहेगी? तुम्हारे पिता श्री की इच्छा है पानी पीने की, मैं जल्दी से ले जा रही हूं। यह नहीं कहेगी कि तुम्हारे पिता का हुक्म है मेरे लिए क्योंकि दोनों एक दूसरे के अर्धांग है। पति-पत्नी एक दूसरे के अर्धांग है, वहां हुक्म शब्द का प्रयोग नहीं होगा लेकिन मूलतः स्वरूप में क्या है? हृदय की इच्छा ही कहीं हुक्म कहलाती है, कहीं इच्छा कहलाती है। दोनों में कोई अंतर नहीं है। जैसे उपनिषदों में एक वाक्य बार-बार आता है, तैत्तिरीय उपनिषद में है, छंद योग में है, **स अकामयत बहु स्याम् प्रजायेय**, उसने कामना की, इच्छा की कि मैं बहु स्याम, अनंत सृष्टि को पैदा करूं।
इच्छा कहां होती है? हृदय में होती है। सारा जगत कहां से प्रकट होता है? परमात्मा के आदेश से प्रकट होता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो **जैसे हुक्में किया सब प्रसार।** संत वाणी सारी यह कहेगी कि परमात्मा के हुक्म से यह संसार बना है। कहने का ढंग अलग-अलग है, स्वरूप एक ही होता है। जैसे कोई व्यक्ति घर में घर का प्रिय सदस्य होता है लेकिन जब वो बाहर होता है तो सारी दुनिया उसको सिजदा बजाती है, सैल्यूट मारती है लेकिन जब वह पति घर पर आता है, पत्नी थोड़े ही उसको सैल्यूट बजाएगी या साष्टांग लेट जाएगी। बस परमधाम की आत्माओं के लिए जो राज जी के दिल की इच्छा है, संसार के लोगों के लिए वह हुक्म कहलाता है लेकिन हमने उसकी वास्तविकता को न समझने के कारण हुक्म का स्वरूप अलग मान लिया। महामति जी की आत्मा कह रही है-

एह करत सब हुकम, ले अव्वल से आखिर।
इत मैं बीच काहू में नहीं, मैं ल्यावे सो काफर।।44।।
खिलवत प्र.5

कितनी कठोर बात कही है, आप देखिए, हमारे और राज जी के बीच में क्या पर्दा है? खिलवत की बात कही जा रही है, खिलवत में क्या है? बताया जा रहा है कि एक ही अक्षरातीत का हृदय श्यामा जी के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। पहले समझना जरूरी है, कई बार चर्चा में इसका प्रसंग हो चुका है।
बर्फ जब जमा हुआ है तो इसको क्या कहेंगे? घनीभूत । पानी एक ही द्रव्य जल तत्व है, जब घनीभूत रूप में है तो बर्फ कहलाता है, जब बहने लगता है तो वह जल कहलाता है।
मूलतः एक ही जल तत्व है। उसी तरह से एक प्रश्न आता है कि तर्क शास्त्र में पहले राज जी हुए या पहले परमधाम हुआ? आप क्या उत्तर देंगे? जब परमधाम था ही नहीं तो राज जी रह कहां रहे थे और जब राज जी थे ही नहीं तो परमधाम को किसने प्रकट किया? आप तरह-तरह की बातें कर सकते हैं कि यह तो अनादि पदार्थ है।
ठीक है, दूसरा प्रश्न मैं करूं, पहले गुड़ हुआ कि गुड़ में मिठास आई, आप क्या उत्तर देंगे? पहले नमक बना कि नमक का लवणापन पहले हुआ, पहले ज्योति हुई उसका प्रकाश फैला कि पहले प्रकाश हुआ और उसकी ज्योति हुई। कहने का आशय यह है कि हकीकत और मारिफ़त एक दूसरे के पूरक हैं ।श्री राज जी के हृदय की इच्छा ही श्यामा जी को प्रकट करती है। श्यामा जी का स्वरूप कभी प्रकट नहीं हुआ लेकिन बुद्धिगम्य बनने के लिए यह बात कही जा रही है। श्यामा जी के हृदय की इच्छा से ही सब कुछ है। वाणी क्या कहती है, **अन्तर पट खोल देखिए, दोऊ आवत एक नजर** अंतर की दृष्टि से देखेंगे तो क्या होगा कि जो श्यामा जी हैं, वही राज जी हैं।
हक को हक देखत, हुई फरामोसी रंचक। सखियां भी हक राजजी का स्वरूप हैं, श्यामा जी भी राज जी का स्वरूप हैं, पूरा परमधाम भी उन्हीं का स्वरूप है क्योंकि सभी कुछ राज जी के हृदय से ही प्रकट हुआ है।
जैसे देखिए जो बर्फ होती है, यदि उस बर्फ में कोई लकड़ी या कोई पदार्थ पहले से मिला हो तो जब वो बर्फ पिघलती है तो पानी से वह कुछ अलग सा दिखने लगता है लेकिन यदि शुद्ध बर्फ हो तो उससे शुद्ध जल ही प्रवाहित होगा। इसलिए एक ही अक्षरातीत का हृदय क्रीड़ा करता है। क्रीड़ा कब होगी? जब उसके अंदर प्रेम और आनंद की इच्छा होगी। इच्छा अनादि है, इच्छा अनंत काल से है इसलिए अक्षरातीत में, जो सत्य है, अखंड स्वरूप वाला है, उसमें चित्घन प्रेम का स्वरूप भी है और आनंद का स्वरूप भी है। प्रेम का स्वरूप आनंद की क्रीड़ा करेगा ही और उसके जितने स्वरूप होंगे सब उसी के होंगे इसलिए परमधाम की खिलवत में क्या है? वहदत है।

निस्बत में खिलवत है, खिलवत में वहदत है।

ए क्यों होए बिना निसबतें, इतहीं हुई वाहेदत।
निसबत वाहेदत एकै, तो क्यों जुदी कहिए खिलवत।।27।।
सिनगार प्र.11

निस्बत से खिलवत को अलग नहीं कर सकते, खिलवत से वहदत को अलग नहीं कर सकते। वहदत का अर्थ क्या है? एक दिली। जो श्यामा जी का दिल है, वही राज जी का दिल है, वही सखियों का दिल है, वही खूब खुशालियों का दिल है और वही परमधाम के 25 पक्षों का दिल है। यहां तक कि परमधाम के जितने पशु-पक्षी हैं, **जिमी जात भी रूह की, रूह जात आसमान।** धरती-आकाश, पशु-पक्षी, दीवालें, हवा, जो कुछ भी है, वो आत्मा का स्वरूप है।
राज जी के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। इस संसार में कुछ अलग है। इस संसार में हमारे जीव के अंदर एक सूक्ष्म जीव होता है जिसकी चेतनता पूरे शरीर में व्याप्त होती है। ऐसा सूक्ष्म जीव जिसको आंखों से देखा नहीं जा सकता, सूक्ष्मदर्शी से भी नहीं देखा जा सकता, जो किसी भी जड़ पदार्थ प्रकृति से भी सूक्ष्म होता है लेकिन उसकी चेतनता पूरे शरीर को व्यापक किए रहती है।
एक व्हेल मछली होती है जो हाथी से सात गुना बड़ी होती है, व्हेल मछली के शरीर का जीव और एक अमीबा का जीव दोनों का परिमाण बराबर ही होगा लेकिन एक चेतना पूरे शरीर को चेतन बनाए रखती है। उसी तरह से एक ब्रह्म की सत्ता पूरी सृष्टि को कंपनशील बनाए रखती है और कंपन चलता रहता है लेकिन जिसके कंपन से सृष्टि चल रही होती है, वह स्वयं इस कंपन में नहीं होता।
अब हमें समझना है कि परमधाम की खिलवत क्या है? पहले ही मैंने कहा कि निस्बत में खिलवत और खिलवत में वहदत। हम सुंदरसाथ अभी निस्बत को पूरी तरह से पहचान नहीं पाए हैं। मैं आपको एक दृष्टांत से समझाता हूं तो पता चलेगा कि निस्बत की पहचान क्या है? जैसे एक राजा है, अपने राज्य में जा रहा है। अचानक वह देखता है कि एक मार्ग में एक झोंपड़ी के बाहर 5 साल का बच्चा धूल में लेट रहा है। राजा के मन में इच्छा होती है कि मैं इस बच्चे के साथ खेलूं, उसको गले लगाऊं तो वह सोचता है कि मैं राजा हूं तो बच्चे को गले लगाने का अधिकार नहीं पा सकता क्योंकि उसको पता है कि मेरे कपड़े, राजसी वस्त्र, स्वर्ण हीरे मोती के आभूषण सारे गंदे हो जाएंगे लेकिन उसे यदि बच्चे का प्रेम चाहिए तो उसको राजा बनना छोड़ना पड़ेगा, उसको बालक की तरह बनना ही पड़ेगा, बच्चे की भाषा में बात करनी पड़ेगी। यदि बच्चा तोतला बोलता है तो उसको भी तोतली भाषा में बोलना पड़ेगा। यदि वह अपनी विद्वत्ता दिखाएगा, अंग्रेजी में बोलेगा, संस्कृत में बोलेगा तो बच्चे को क्या लेना देना। बच्चे का हृदय जो चाहता है यदि उसके हृदय के अनुकूल राजा

का हृदय नहीं है तो राजा उस बच्चे के प्रेम का अधिकारी नहीं हो सकता। कलश में एक चौपाई आती है,

सुख देऊं सुख लेऊं, सुख में जगाऊं साथ।
इंद्रावती को उपमा, मैं दई मेरे हाथ।।68।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.23

पहले मुझे भी संशय हुआ करता था कि राज जी तो सबको सुख देने वाले हैं, यह सुख लेऊं क्यों लिख दिया कि राज जी को सुख कैसे कोई दे सकता है लेकिन वाणी इसका समाधान करती है। स्वयं कह रहे हैं कि **सुख देऊं सुख लेऊं।** जब आप प्रातः काल की आरती करते हैं तो क्या कहते हैं- **सुख को निधान, जय जय सुख को निधान।** तारतम पढ़ते हैं तो क्या कहते हैं? **श्री श्यामा जी वर सत्य हैं, सदा सत सुख के दातार**, श्यामा जी सुख देने वाले हैं। आपको कहा जाए कि क्या ऐसा कह सकते हैं कि राज जी सुख लेने वाले हैं, तो आप उत्तर देंगे कि नहीं, क्योंकि, परमात्मा तो देता है लेकिन प्रेम में वह लेता भी है।
यदि राजा पांच साल के बच्चे के आलिंगन का सुख पाना चाहेगा तो उसके धूल भरे शरीर को उसे गले लगाना पड़ेगा और बच्चा भी तभी गले मिल पाएगा, जब वह समझेगा कि यह राजा नहीं है। जैसे उसके पिता झोपड़ी में रहते हैं, वह भी समझेगा कि मेरे पिता जैसे ही तो हैं। उसको पता नहीं कि यह राजा सोने के महल में रहते हैं, इनका बहुत बड़ा महल है, इनके बहुत बड़े-बड़े सैनिक इनकी सुरक्षा में रहते हैं। यदि उसको पता चल जाए कि राजा है, तब तो डर के मारे भाग जाएगा। दोनों में प्रेम का संबंध नहीं हो सकता।
एक तरफ अनंत कहलाने वाला अक्षरातीत है और दूसरी तरफ परमधाम की आत्माएं ऐसे तनों में बैठी हैं, जिन का तन स्वप्न का है। कहां अक्षरातीत सर्वशक्तिमान सकल गुण निधान और कहां परमधाम की ब्रह्मसृष्टियां जिन जीवों पर बैठी हैं वो विषय विकारों से भरे हुए हैं। अज्ञानता उनके अंदर है, न जाने कितने जन्मों से उनका जीव संसार में भटक रहा है। उनको उदर पोषण के लिए भी न जाने कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं, झोपड़ी में रहना पड़ता है। कहां परमधाम का अक्षरातीत और कहां इस माया के तन को धारण करने वाले जीव के ऊपर परमधाम की ब्रह्मात्मा जो अपने स्वरूप को भूल चुकी है लेकिन राज जी वाणी में क्या कह रहे हैं- **सुख देऊं सुख लेऊं, सुखे जगाऊं साथ** सुख देता हूं, सुख लेता भी हूं। यदि देने के साथ आप लेना का सिद्धांत नहीं रखेंगे तो आप केवल देने वाले बन जाएंगे तो प्रेम का अधिकार आपका छिन जाएगा इसलिए अक्षरातीत लेते भी हैं। प्रेम में वह अक्षरातीत नहीं रहेंगे। जैसे मैंने कहा राजा को पांच साल के बच्चे का प्रेम चाहिए तो उसको भूलना पड़ेगा कि वह राजा है।

वाणी में एक प्रसंग आता है परिक्रमा के अंदर, फेर फेर प्याले लेत हैं, आगूं इन धनी के आए। सखियां क्या करती हैं? परमधाम की लीला का वर्णन है। सभी सखियां, सभी सुंदरसाथ, राज जी के सामने आकर प्रेम के प्याले लेते हैं।

प्रेम का प्याला लेने का तात्पर्य क्या है? राज जी की दृष्टि से ब्रह्मात्माओं की दृष्टि मिलती है। हम इस दुनिया में कह रहे हैं कि दृष्टि मिलने पर प्रेम होता है लेकिन परमधाम की दृष्टि में ही प्रेम है। पूरा कण-कण ही प्रेम का स्वरूप है इसलिए वहां इस तरह की बातें नहीं की जा सकतीं लेकिन इस संसार में कहना पड़ता है। जैसे कि मैंने अभी कहा, फेर फेर प्याले लेत हैं, आगूं इन धनी के आए। लेकिन इसी के पास चौपाई आती है, प्याले आप धनीय को, सामी देत भर भर। पहले प्रेम का प्याला कौन दे रहा है? राज जी। अब प्रेम के प्याला कौन दे रहा है? सखियाँ। एक तो किसी को विश्वास ही नहीं होगा कि परमधाम में भी प्रेम के प्याले, पहले राज जी देते हैं और सखियाँ भी देती हैं क्योंकि दोनों एक स्वरूप हैं और एक स्वरूप हुए बिना प्रेम की रसधारा नहीं बह सकती। **एक रस होइए इस्क सों, चलें प्रेम रस पूर।** एक रस होने का तात्पर्य क्या है? हमारा हृदय और राज जी का हृदय एक हो जाए लेकिन हम तो नवधा भक्ति की दुनिया में डूबे पड़े हैं। इसमें सिखाया जाता है कि राज जी को माथा टेको, दो बार कान पकड़ो, माफी मांगो कि राज जी! जो गुनाह हुए माफ करो, ये बातें प्रारंभिक अवस्था में अच्छी लगती हैं लेकिन जब आप सागर,श्रृंगार, खिलवत और परिक्रमा में विचरण करेंगे तो यह संसार की बातें लगने लगती हैं। जिससे हमारा प्रेम होता है उससे कभी क्षमा नहीं मांगी जाती, उससे कभी भय नहीं होता। लगता है कि जो मैं हूं, वही तो वह है और खिलवत के प्रारंभिक प्रकरणों में यही बात बार-बार बताई जा रही है कि हक की मैं को लेना है। हमारा अहम् खड़ा होता है, कब? जब माया प्रवेश कर जाती है। इसलिए वाणी में कहा है – **इत मैं बीच काहू में नहीं, मैं ल्यावे सो काफर।** कितने कठोर शब्द बोले गए हैं कि परमधाम की ब्रह्मात्माओं के लिए 'मैं' शब्द नहीं है क्योंकि वहां 'मैं' का अस्तित्व ही नहीं है। आपको किसकी 'मैं' हो सकती है? आपको अपने शरीर की सुंदरता की मैं हो सकती है, ऊंचे कुल खानदान में जन्म लेने की मैं हो सकती है, ऊंचे पद को पाने की मैं हो सकती है और अपनी बुद्धि की मैं हो सकती है। जो संसार की उपलब्धियां है उसी की तो कोई मैं करेगा लेकिन परमधाम में क्या है? एक अक्षरातीत के अतिरिक्त कुछ है नहीं।

दूजे तो हम हैं नहीं, ए बोले बेवरा वाहेदत का।
ज्यों खेलावत त्यों खेलत, ना तो क्या जाने बात बका।।36।।
सिनगार प्र.23

क्या कह दिया राजजी ने - **दूजे तो हम है नहीं,** हम दूसरे नहीं है लेकिन इस माया के संसार में हम

दूसरे तो हैं। यदि हमने राज जी का चरणामृत प्रसाद नहीं लिया तो पुरानी परंपरा में डांट पड़ेगी कि राज जी का प्रसाद नहीं लिया, परिक्रमा नहीं की, पाठ पूजा नहीं की क्योंकि पहले यही सब सिखाया जाता रहा है। विश्वास करने के लिए यह सब अच्छी चीजें हैं लेकिन यदि आप खिलवत में प्रवेश करना चाहेंगे तो राज जी के दिल में डूबना पड़ेगा, आपको अपने दिल में राज जी को बसाना पड़ेगा। दिल में कैसे बसाया जाता है? श्रृंगार की पहली चौपाई प्रारंभ होती है-

बरनन करो रे रूह जी, हकें तुम सिर दिया भार।
अर्स किया अपने दिल को, माहें बैठाओ कर सिनगार।।1।।
सिनगार प्र.1

अर्श किया अपने दिल को, राज जी हमारे दिल में विराजमान होकर बैठे हैं, दिल अलग हो और राज जी अलग हों, क्या ये संभव है? जो दिल है, वही राज जी हैं। जो राज जी हैं,वही दिल है। राज जी का हृदय ही 25 पक्ष है। 25 पक्षों में राज जी हैं और राज जी में 25 पक्ष हैं।
राज जी दिल में रहते हैं और राज जी में सब कुछ रहता है।
जैसे कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति अकेले में खोया रहता है, तो क्या कहते हैं? वह तो खुद में खोए रहते हैं। यह जो स्वयं शब्द है, अरबी में जिसको खुद कहते हैं, फारसी में, खुद में खोए रहना, स्वयं में डूबे रहना, का अर्थ क्या है? बहिर्मुखता से थोड़ा अलग होना, लेकिन हम तो स्वयं को नहीं जानते, हम अपने शरीर को जानते हैं, लौकिक उपलब्धियों को जानते हैं और इसी को पहाड़ बनाकर सिर पर लिए फिरते हैं। जैसे आपने पी.एच.डी किया है, आपको आपका कहीं परिचय दिया जा रहा है कि इन्होंने बहुत बढ़िया से एम.ए की पढ़ाई की है, आप तुरंत बोलेंगे कि मैंने एम.ए ही नहीं, पी.एच.डी भी किया है।
आप 1 लाख की सेवा देंगे, किसी ने कह दिया कि इन्होंने 10,000 की सेवा दी है तो आपको बहुत बुरा लगेगा कि क्यों नहीं कहा जा रहा है कि मैंने 1 लाख की सेवा दी है। अहम् कहाँ खड़ा होता है? इस शरीर के साथ जो कुछ जुड़ा हुआ है, उसमें अहम् खड़ा ही होता है। मैं हूं, मैं का अस्तित्व जब तक खड़ा रहता है, तब तक प्रेम नहीं हो सकता।
जैसे मैंने आपको बताया कि जब तक राजा समझेगा कि मैं राजा हूं, इस गरीब के बच्चे को, जो धूल से भरा हुआ है, देखने में सुंदर भी नहीं है, कैसे मैं गले लगा सकता हूं और वो बच्चा जब तक सोचेगा कि मैं एक झोपड़ी में रहने वाला, मैं राजा के गले कैसे लग सकता हूं, तो दोनों में कभी भी आत्मीयता नहीं हो सकती है, बस यही कहानी है।
हमारे और धनी के बीच में एक पर्दा है, माया का। एक चौपाई बहुत महत्वपूर्ण है,

हक भी कहे दिल में, अर्स भी कह्या दिल।
परदा भी कह्या दिल को, आया सहूरें बेवरा निकल।।69।।
सिनगार प्र.11

हक भी कहे दिल में, राज जी कहाँ हैं, हमारे दिल में हैं। जिस दिल में आप राज जी को बसाते हैं, वह दिल ही तो पर्दा बन गया। दिल ही पर्दा है, दिल ही फरमोशी का स्वरूप है। जैसे मान लीजिए आपके दिल में क्या है? संसार की कोई न कोई इच्छा तो है।

जैसे देखिए, इसी प्रकरण में चौपाई कहती है, अपन सोवत हैं नींद में, खेल खेलावत खसम। हम निद्रा में सो रहे हैं क्योंकि हमारे दिल में फरामोशी आ गई है। एक प्रकरण यह है, रूहों को हक खिलवत में फरामोशी दई।

प्रश्न यह है कि क्या खिलवत में फरामोशी आ सकती है? खिलवत तो राज जी का दिल है, श्यामा जी का दिल है, आपका दिल है, उसमें फरामोशी कैसे आ सकती है, अज्ञानता कैसे आ सकती है? सूर्य में अंधकार कैसे आ सकता है? किसी को स्वीकार नहीं होगा। खेल को देखने के कारण यह बात कह दी गई है क्योंकि परात्म की नजर आत्मा के रूप में इस माया के खेल को देख रही है इसलिए कहना पड़ता है कि परमधाम में वहदत के अंदर फरमोशी ने प्रवेश कर लिया, मूलतः नहीं किया लेकिन कर भी लिया। जैसे एक शेर को पिंजरे में बंद कर दीजिए और उसके पास एक मृग को या शाकाहारी किसी भी जानवर को, बकरे को बांध दीजिए, खूब खिलाइए, एक महीने के बाद उसका मांस कितना बढ़ेगा। भले ही शेर पिंजरे को तोड़कर नहीं निकलेगा लेकिन जब गुर्राएगा तो बेचारा बकरा भय के मारे कुछ खा नहीं पाएगा। कितना भी खिलाया जाए तो भी उसका स्वास्थ्य नहीं बढ़ सकता है क्योंकि उसके हृदय में पिंजरे में रहने वाला सिंह हमेशा प्रवेश किए रहेगा, बस यह कहानी है।

जैसे किसी खट्टी वस्तु को दूर से देखते ही आपकी जिह्वा पर लार आ जाती है, खट्टा पदार्थ दूर है लेकिन केवल विचारों के चिंतन मात्र से कि वह खट्टा पदार्थ है, जिह्वा पर लार की उत्पत्ति हो जाती है।

उसी तरह से समझिए परमधाम की आत्माएं माया के खेल को देखने की जैसे इच्छा करती है, इस जीव पर बैठकर, जैसे खेल को देख रही हैं तो परात्म के तनों में फरामोशी आ जाती है। वहदत में फरामोशी, खिलवत में फरामोशी, निस्बत के स्वरूपों में फरामोशी, एक असंभव बात संभव में परिवर्तित हो जाती है। जब तारतम ज्ञान का प्रकाश मिलता है, तब बार-बार समझाने पर भी, कोई मैं खुदी लाए तो राज जी को कठोर शब्दों में कहना पड़ता है, **इत मैं बीच काहू में नहीं, मैं ल्यावे सो काफर।** ऐसा क्यों कहा जाता है? एक मां अपने बच्चे को बार-बार गलती करने पर जब फटकार लगाती है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि मां के मन में घृणा है। उसकी गलती को सुधारने के लिए

कठोर शब्दों से संबोधित करती है, जैसे कि कोई दुश्मन कर रहा हो किंतु मां के अंदर तो कभी शत्रुता का भाव नहीं होता।
उसी तरह से राज जी सब सुंदरसाथ को सिखापन दे रहे हैं कि किसी भी बात में मैं मत लाइए, कि मैं कुछ कर रहा हूं। परमधाम में क्या है? दूजे तो हम हैं नहीं, ए बोले बेवरा वाहेदत का। जैसे सागर है, सागर में असंख्य लहरें उमड़ती है। लहरों में जो जल होता है, सागर से ही तो आता है। सागर से अलग लहर का अस्तित्व कोई सपने में भी नहीं सोच सकता। हम कहते हैं कि हम तो श्यामा जी के अंग हैं, तो श्यामा जी किसके अंग हैं? राज जी के। राज जी के दिल कौन हैं? श्यामा जी। श्यामा जी के दिल कौन हैं? सखियां। सखियों के दिल कौन हैं? खूब खुशालियाँ। यहां के भावों से समझने के लिए, परमधाम में मत समझिए।
कभी-कभी तो परमधाम की लीला का ऐसे वर्णन किया जाता है, जैसे आपने चर्चनी का प्रसंग पढ़ा होगा, तो क्या कहा जाता है कि खूब खुशालियाँ पुखराज में रहती है, पुखराज के महलों में रहती है और खूब खुशालियाँ कभी रंग महल में प्रवेश नहीं कर सकती, तो वो रंग महल क्या कहलाये जहां बंधन बन गया। हम माया की दुनिया में रह रहे हैं, इसलिए अर्श बका वर्णन किया, ले मसाला इत का। पशु पक्षियों को भी रोक लगा दी जाती है कि तुम रंग महल के अंदर नहीं जाओगे। भाई वो पशु पक्षी कुछ है ही नहीं।

और खेलौने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।
एक जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए इप्तदाए।।84।।
खुलासा प्र.16

आपको खिलवत की बात बतानी है, लेकिन जाहरी लीला में भी यदि खिलवत का प्रवेश करा दिया जाएगा तो लीला कैसे होगी, जैसे माया के संसार में हैं हम, माया के संसार में एक राजा है, एक रानी है, रानी की सेविकाएं हैं, इन्हीं भावों को लेकर परमधाम की लीला का वर्णन किया गया है ताकि हमारी मोटी बुद्धि कुछ कुछ लीला को समझ सके लेकिन दूसरी जगह पर उसी बात पर आपत्ति जता दी गई है कि

और खेलौने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।
एक जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए इप्तदाए।।84।।
खुलासा प्र.16

परमधाम में कोई पशु पक्षी नहीं है, खूब खुशालियाँ नहीं है, वहां बंदर नहीं है, रंग महल भी नहीं है।

केवल राज जी हैं। राज जी का दिल ही क्रीड़ा कर रहा है, असंख्य रूपों में दृष्टोचर हो रहा है, लीला रूप में लेकिन माया की दुनिया में जब बताना पड़ता है तो यह भेद की रेखा खींचनी पड़ती है, कहना पड़ता है। एक एक मोमिन के अलेखे हैं सेवक। किसी को यह पता नहीं कि जिसको सेवक कहा जा रहा है, वह सेवक के रूप में तो स्वयं है। एक तरफ राज जी लीला रूप में श्यामा जी के साथ हैं, तो दूसरी जगह लीला रूप में वही सखियां हैं, वही खूब खुशालियाँ हैं, वही पशु पक्षी हैं और उन्हीं का हृदय, जिमी जात भी रुह की, रुह जात आसमान। धरती के रूप में कौन है, आकाश के रूप में कौन है, वायु के रूप में कौन है? राज जी का हृदय ही तो है और जिसने उस भावना से समझ लिया, वही तो कह सकता है - **सर्वं खल्विदं ब्रह्म।**

इसलिए मनीषियों ने सर्वं खल्विदं ब्रह्म की कल्पना की, किंतु उसको यथार्थ रूप में जान नहीं पाए। तारतम वाणी के माध्यम से इस गहन रहस्य के सारे पर्दे को हटाया गया है और खिलवत जिसके बारे में मैंने कहा केवल दिल, यह दिल का संबंध है, संसार का संबंध नहीं।

मैंने प्रारंभ में दृष्टांत दिया था, एक गरीब की झोंपड़ी में रहने वाले 5 साल के बच्चे का और एक चक्रवर्ती राजा का, जो सोने के महल में रहता है, दोनों में कैसी असमानता है लेकिन यदि दोनों में प्रेम होगा तो राजा भूल जाएगा कि मैं राजा हूं, बच्चा भूल जाएगा कि मैं झोपड़ी में रहने वाला हूं और आत्मीयता होने पर यदि राजा उस बच्चे को अपने महल में ले जाता है तो अधिकार के साथ वह बच्चा बिना डरे हुए राजा के बगल में सिंहासन पर बैठ जाएगा, उसकी गोद में भी बैठ जाएगा क्योंकि उसको भय नहीं है। हमारे पास भय है कि यदि हमने राज जी को भोग नहीं लगाया तो राज जी हमारा नाश कर देंगे। राज जी किसी का नाश करने वाले नहीं है। राज जी के पास भावना भी नहीं है कि मैं किसी का नाश करूं।

जो यह कहता है -

अब दुख न देऊं फूल पांखड़ी, देखूं सीतल नैन।
उपजाऊं सुख सब अंगों, बोलाऊं मीठे बैन।।4।।
कलश हिंदुस्तानी प्र.23

जो प्रेम का अनंत सागर है, सुख का अनंत सागर है, वहदत का सागर है, मारिफ़त का सागर है, वो कभी दुनिया के देवी देवताओं की तरह नहीं है कि उनका मंत्र जप नहीं किया तो कुछ अनिष्ट हो जाएगा। जैसे सुंदरसाथ भी कहते हैं, आपने अशुद्ध पढ़ दिया, आपने कुछ ऐसा कर दिया तो नाश हो जाएगा। सुंदरसाथ जी भय छोड़िए, जहां प्रेम होता है वहां भय नहीं होता। जहां भय की दीवार खड़ी हो जाती है वहां प्रेम नहीं होता। तुलसीदास जी ने जरूर कहा है कि **भय बिन होए ना प्रीत**, यह संसार के धरातल पर कही जाती है। पिता पुत्र में जो संबंध है, एक मर्यादा का है। मां-बेटे में संबंध

है, पति-पत्नी में है, मित्र-मित्र में है। संसार के रिश्तों को निभाने के लिए एक भय का आवरण दिया जाता है कि उस रिश्ते को न तोड़ा जाए, नहीं तो क्या होगा? अनिष्ट होगा। इसलिए तुलसीदास जी ने कहा है कि भय बिन होए ना प्रीत।
वह सागर को बांधने के संबंध में बात कही गई है लेकिन जहां प्रेम का वास्तविक स्वरूप है वहां द्वैत होता ही नहीं, दिल मिले बिना प्रेम हो ही नहीं सकता। मैंने बार-बार इस चर्चा के दृष्टांत में कहा है कि यदि राजा का दिल और गरीब बच्चे का दिल नहीं मिलता तो दोनों में आत्मीयता नहीं हो सकती, दोनों में प्रेम नहीं हो सकता।
यदि आपको राज जी से प्रेम करना है, यदि आप चाहते हैं कि हमारी सुरता परमधाम के 25 पक्षों में पहुंचे, मूल मिलावे में पहुंचे तो आपको वैसी ही भाषा सीखनी पड़ेगी।

एक रस होइए इस्क सों, चलें प्रेम रस पूर।
फेर फेर प्याले लेत हैं, स्याम स्यामाजी हजूर।।29।।
सागर प्र.11

प्रेम के प्याले आपको मिलने प्रारंभ हो जाएंगे और आपकी आत्मा के सम्मुख श्याम श्यामा जी, राज श्यामा जी हजूर उपस्थित हो जाएंगे। राज जी कहीं दूर नहीं है, आपका दिल क्या है? आपका दिल ही तो वहदत है, आपका दिल ही तो खिलवत है, आपका दिल ही तो राज जी का स्वरूप है, आपका दिल कोई अलग दिल नहीं है, तभी तो आप वहदत के स्वरूप कहे जाते हैं लेकिन हमने एक धारणा बना ली है कि हम संसार में आए हैं, राज जी के चरणों में हमें रहना है, तो इसलिए हमारे समाज के विद्वानों ने संस्कृत में एक श्लोक बना दिया। उसमें कहा कि दिनैक बंधु, नकल करने के लिए भी थोड़ी बुद्धि चाहिए थी, दीन बंधु कहा, अक्षरातीत कोई दीन बंधु थोड़े हैं, हमारे भाई थोड़े हैं। दुनिया वाले दीन बंधु कहते हैं, दीनानाथ कहते हैं, हमने भी उनकी नकल मारनी शुरू कर दी। वह हमारी आत्मा का प्रियतम है, हमारा सर्वस्व है, हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं है। लेकिन हम उनकी नकल करते हैं।
अभी शरद पूर्णिमा आ रही है, कितने सुंदरसाथ जाएंगे, बाई जू राज जी के मंदिर में जाएंगे, कोई संतान मांगने के लिए जाएगा, कोई कष्ट निवृत्ति के लिए जाएगा। गुम्मट जी में नारियल बांधेंगे, कुछ मांगेंगे। अरे, अक्षरातीत के पास आप आए, संसार की छोटी चीजें क्यों मांग रहे हैं, सर्वशक्तिमान सकल गुण निधान, उसके पास जाकर हाथ फैलाते हो, क्यों मांगते हो भीख? आप उससे प्रेम क्यों नहीं करते? जिससे प्रेम होता है उससे तो मांगने की आवश्यकता ही नहीं क्योंकि मांगने वाले का भी वही दिल है, देने वाले का भी वही दिल है। वाणी क्या कहती है-
महामत कहे ए मोमिनों, ए निसबत इस्क सागर। राज जी इश्क के सागर हैं, तो ब्रह्मात्माएं भी

इश्क के सागर हैं। राज जी मेहर के सागर है तो सखियां क्या हैं? मेहर की भीख मांगने वाली थोड़े हैं। वाणी में क्या कहा गया? दिल मोमिन मेहर सागर। यह मैं नहीं कह रहा हूं, दिल मोमिन मेहर सागर, ब्रह्मात्माओं का हृदय ही मेहर का सागर है लेकिन मुझे तो आज तक मेहर सागर याद ही नहीं हो पाया और मैं कभी पाठ भी नहीं करता। पहले शुरू शुरू में देखा देखी, मैंने भी कुछ बार किया होगा लेकिन अब मेरे से होता ही नहीं।

दिल मोमिन मेहर सागर, इसका अर्थ क्या होगा? यह मेहर सागर की चौपाई है। ब्रह्मात्मा का हृदय मेहर का सागर है। राज जी का हृदय मेहर का सागर है तो ब्रहमात्मा का हृदय भी मेहर का सागर है लेकिन वही मेहर सागर का हृदय जब जीव भाव में होता है, अपने मिट्टी के पुतले को देखता है, तो गोटा लेकर बैठ जाता है, नारियल चढ़ाने लगता है, साष्टांग लेट कर कहता है कि राज जी! इतनी मेरी इच्छा पूरी कर दो तो फिर कुछ पैसा और चढ़ा दूंगा। राज जी के साथ भी सौदेबाजी। दिल देना नहीं चाहता क्योंकि उसका दिल किसके लिए है, परिवार के लिए, पत्नी के लिए, पति के लिए, बच्चों के लिए, समाज के लिए, अपने और धनी के बीच में तो उसने पर्दा कर रखा है तभी तो वाणी में कहा है -

पर्दा तू ही करत है, अंतर ना आड़े नूर। हमने अपने और राज जी के बीच में एक पर्दा स्वयं खींचा है इसलिए कहा है -

हक भी कहे दिल में, अर्स भी कह्या दिल।
परदा भी कह्या दिल को, आया सहूरें बेवरा निकल।।69।।
सिनगार प्र.11

क्या हम जागृत हैं? नहीं। जागृत हो जाएंगे आप, हृदय की फरामोशी को दूर कर दीजिए।

अन्तस्करन आतम के, जब ए रह्यो समाए।
तब आतम परआतम के, रहे न कछू अन्तराए।।44।।
सागर प्र.11

हमारी आत्मा की जो अवस्था है, उसमें केवल राज जी का श्रृंगार बस जाए तो जो परात्म की अवस्था होगी वही आत्मा की भी अवस्था हो जाएगी लेकिन हमारी आत्मा में युगल स्वरूप नहीं बसते हैं, हमारी आत्मा में संसार बसता है। हम वाणी पढ़ते हैं लेकिन हमने राज जी को अपना दिल नहीं दिया। राज जी ने अपना दिल दे दिया है, हम नहीं देना चाहते। राज जी हमसे जब संसार को छुड़ाते हैं तो हम चीखने लगते हैं। चीखने का तात्पर्य, देखिए, आप किसको चाहते हैं? सबको मालूम

है, परिवार के रिश्ते होते हैं, पति-पत्नी में घनिष्ठता होती है, पिता-पुत्र में घनिष्ठता होती है, परिवार के सदस्यों में घनिष्ठता होती है, हम इस घनिष्ठता की बलि वेदी पर राज जी को खो देते हैं।
हमारा पहला प्रेम किससे होना चाहिए? राज जी से होना चाहिए। हमें अपना हृदय किसको देना चाहिए? केवल राज जी को देना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि परिवार में आप हमेशा विरोध बनाए रखिए कि हमें राज जी से प्रेम है, हमें परिवार के किसी सदस्य से कोई लेना देना नहीं, ऐसा नहीं है। आपका जो परिवार के प्रति कर्तव्य है, उसको निभाइए, कर्तव्य निभाना अलग होता है, हृदय देकर प्रेम करना अलग होता है। अपना हृदय किसको दीजिए? राज जी को क्योंकि आपका अपना हृदय है ही नहीं। मैं पूछूं आप कौन हैं, क्या बताएंगे, आप अपने शरीर का परिचय देना प्रारंभ करेंगे। मैं पुनः पूछूंगा, वाणी से कहिए, आप कहेंगे कि मैं परमधाम की आत्मा हूं। परमधाम की आत्मा किसका प्रतिबिंब है, परात्म का। परात्म क्या है? राज जी का दिल है। राज जी का दिल ही है जो परात्म है, उसका प्रतिबिंब स्वरूप आत्मा है, आत्मा जीव पर बैठकर खेल को देख रही है तो आप कौन हो गए? राज जी का दिल, और राज जी का दिल उन्हीं को समर्पित नहीं हो पाता, तो इससे बड़ा गुनाह और क्या है? उस दिल ने राज जी से अपने को किनारा कर लिया, तो जिससे किनारा किया, उसको कैसे देखा जा सकता है?
तिन क्यों मुख ऊंचा होएसी, जो पिउसों बैठी मुख फेर। हमने राज जी से मुख फेर लिया है, संसार को देख रहे हैं, शरीर को देख रहे हैं। शरीर की उपलब्धियों पर हम इतराते हैं कि देखिए मैं इतना धनवान हूं, मैं इतना सुंदर हूं, मैं इतना विद्वान हूं, मेरे जैसा कोई नहीं है। ये किसकी प्रवृत्ति है? मैं की। इसलिए राज जी ने कहा है, मैं ल्यावे सो काफर,यह सबसे बड़ा गुनाह है। यदि आप हुक्म को समझेंगे, तैसा इत होता गया, जैसा हजूर हुकम करत। सब कुछ करने वाला कौन है? एक राज जी का हुक्म, राज जी के दिल की इच्छा।
आप देखिए, लीला के माध्यम से हमको कहा जाता है कि परमधाम में कहीं जाना होता है तो राज जी श्यामा जी से पूछते हैं कि श्यामा जी बताओ कहाँ चलना है? अब श्यामा जी क्या करें, वो सखियों से पूछती हैं, बताओ कहाँ चलना है? राज जी का ही दिल श्यामा जी हैं।
आपने जैसे पानी पीना होता है, मिठाई खानी होती है, तो यह इच्छा कहाँ से होती है? दिल से, तो आप किससे पूछते हैं? दिल से। दिल ही दिल से पूछता है। राज जी अपने दिल श्यामा जी से पूछेंगे, श्यामा जी सखियों से पूछेंगी। सखियां, राज जी और श्यामा जी तीन नहीं हैं, दिख रहा है तीन हैं, जिसमें लीला करने के लिए तीन हैं, वास्तव में एक हैं। एक ही दिल सब में क्रीड़ा कर रहा है इसलिए परमधाम की जागृति की पहचान यह है कि केवल राज जी के दिल की इच्छा से सब कुछ हो रहा है, हम कुछ भी नहीं हैं । यह बात कहनी बहुत सरल लगती है लेकिन व्यवहार में उतनी ही कठिन है। माया के संसार में तो बहुत ही कठिन है।
देखिए मुझे किसी पर टीका टिप्पणी करने का अधिकार तो नहीं है लेकिन समझने के लिए बात

में कह देता हूं, कि माया तो दुख निधान जी। माया इतनी शक्तिशाली है कि जिन ब्रह्म मुनियों ने श्री जी के चरणों में रहकर, उनके नेत्रों से परमधाम का अमृत रस पाया, उन ब्रह्म मुनियों के बीच में भी कुछ माया की झलक आ जाती है। यह भी लगे दुख देन, प्रकरण की जितनी चौपाइयां है इसी तरफ़ संकेत करती है।

तारतम सब समझहीं, धाम सैयाँ हम बेहेन।
तित भी ब्रोध छूटा नहीं, ए भी लगे दुख देन।।15।।
किरन्तन प्र.63

श्री जी के मुखारविंद से, 5000 की संख्या है, तारतम समझ रहे हैं, चर्चा सुनते हैं।
चरचा सुनें वतन की, जित साथ स्यामा जी स्याम।
सो फल चरचा को छोड़ के, जाए लेवत हैं हराम।।13।।
किरन्तन प्र.105

ये किस में घटा, जो 5000 की जमात में रहते थे। माया उनके बीच में ही प्रवेश कर जाती है। मुकुंद दास जी, जो अपना ग्रंथ लिखते हैं, छत्रसाल जी के आदेश से उसको फिंकवा दिया जाता है।
छत्रसाल जी के इस व्यवहार पर मुकुंद दास जी का मन व्यथित हो जाता है और गौरी बनाते हैं तो कहते हैं कि,
जाऊं कहां महाराज, शरण तज, जाऊं कहां महाराज। कहने का आशय क्या है? जो परमधाम की ब्रह्मात्मा है, जब माया का तन धारण करती है तो जीव तो यहां का है, जीव अपने स्वभाव के अनुसार आचरण करने लगता है। इसी तरह से देखिए, रतन बाई भी परमधाम की आत्मा, इंद्रावती भी परमधाम की आत्मा लेकिन बिहारी जी क्या सोचते हैं कि खंभालिया के राजा को बता दो कि मिहिरराज इस रास्ते से जाने वाले हैं और मिहिरराज की हत्या करा दें। एक आत्मा दूसरी आत्मा के तन को मरवाना चाहती है, किसके लिए? क्योंकि वो निद्रा में है। जब तक हमें अपने अस्तित्व का बोध रहेगा कि मैं हूं, तब तक माया हमारे चारों ओर मंडराती रहेगी। जब यह बोध रहेगा कि मैं कुछ भी नहीं हूं, केवल राज जी का दिल है, तो समझ लीजिए, अब हमारी आत्मा जागनी के पथ पर चल पड़ी है। इसलिए महामति जी की आत्मा कह रही है -
इत मैं बीच काहू में नहीं, मैं ल्यावे सो काफर।
हमारे और धनी के बीच में किसी भी तरह से संसार की मैं नहीं आनी चाहिए, केवल हक की मैं आनी चाहिए, राज जी की मैं, कि मैं कुछ नहीं हूँ, न मैं शरीर हूँ, न इंद्रियां हूँ, न अंतःकरण हूँ, न जीव हूँ और तो और, आत्मा और परात्म की भी बात न करें, हम केवल राज जी के दिल हैं। यदि हम यह

बात समझ जायें कि हम और राज जी दो नहीं, एक ही दिल दो स्वरूपों में क्रीड़ा कर रहा है तो सारी भ्रांति ही मिट जाए और हमारी आत्मा की तत्क्षण जागनी हो जाए। राज जी करें, सुंदरसाथ के हृदय में वाणी का ज्ञान प्रवेश करे और जल्दी से जल्दी सभी जागृत हों। ऐसी मेरी शुभकामना।

ल्याओ प्यार करो दीदार

क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।
ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन।।

।। प्रणाम जी ।।

श्री परिक्रमा
प्रेम बसे पिया के चित
श्री प्राणनाथ जी वाणी
|| प्रेम खोल देवे सब द्वार ||

प्राणेश्वर अक्षरातीत ने इस परिक्रमा ग्रंथ के माध्यम से हमें एक संदेश दिया है कि यदि परमधाम के 25 पक्षों में विचरण करना है तो सबसे पहले हमारे अंदर प्रेम की रसधारा बहनी चाहिए। इस परिक्रमा ग्रंथ को किताबी दुलहिन कहा गया है। पहले ही लिख दिया – **श्री किताब इलाही दुलहिन अरस अजीम की**, यह क्या है? परिक्रमा ग्रंथ को अखंड दुलहिन कहा गया है। पहली चौपाई शुरू होती है –

अब कहूं रे इस्क की बात, इस्क सब्दातीत साख्यात।
जो कदी आवे मिने सब्द, तो चौदे तबक करे रद।।1।।
परिक्रमा प्र.1

और उसी प्रकरण की आज चौपाई है –
इस्क साहेब सों नहीं अंतर, जो अरस परस भीतर। अक्षरातीत को पाना है तो क्या करना पड़ेगा? आपको अपने अंदर प्रेम भरना पड़ेगा। प्रेम हिंदी और संस्कृत का शब्द है और अरबी में इसको इश्क कहते हैं, भाषा भेद है। सुंदरसाथ में एक भ्रांति चल गई है कि यह मानना कि परमधाम में इश्क है और योगमाया में प्रेम है, ऐसा नहीं है। परिक्रमा ग्रंथ में ही कहा गया है – **प्रेम बसे पिया के चित,** राज जी के हृदय में प्रेम रहता है। ऐसा भी नहीं समझना चाहिए कि हकीकत में प्रेम है, मारिफ़त में इश्क है, ऐसा नहीं है, यह भाषा भेद है। वाणी की रचना की विशेषता यह है कि कतेब पक्ष का एक शब्द प्रयोग होता है, उसके साथ वेद पक्ष का भी एक शब्द होता है। जैसे आशा और उम्मेद दोनों शब्दों को आप हमेशा एक जगह पाएंगे। पशु और जानवर दोनों एक जगह मिलेंगे और ऐसे ही वन और जंगल, जहां वन शब्द का प्रयोग होगा वहां जंगल शब्द भी आ जाएगा। एक शब्द हिंदी या संस्कृत का और दूसरा शब्द अरबी या फारसी का क्योंकि श्री जी की वाणी का उद्देश्य है सारे संसार में सबको समझाना। **मुस्लिम को मुस्लिम की, हिंदुओं हिंदुओं की तर**, ऐसा क्यों कहा गया? जब तक श्रोता की भावनाओं को आप नहीं समझेंगे, आपका ज्ञान फैल नहीं सकता।
एक बार भगवान बुद्ध के पास उनका शिष्य आया और कहा कि भगवान! उस व्यक्ति को मैंने बहुत समझाया लेकिन उसने मेरी बात सुनी ही नहीं। बुद्ध ने कहा कि उसको बुलाकर लाओ। शिष्य बुला के लाता है, देखा कि इस व्यक्ति को तो कई दिन से अन्न का एक दाना भी नहीं मिला है। बुद्ध ने कहा कि इसके लिए उपदेश नहीं, पहले भोजन आवश्यक है। भरपेट भोजन कराया, उसका मन शांत हुआ और तब भगवान बुद्ध ने उसको उपदेश दिया और उसने ग्रहण किया। बुद्ध ने अपने शिष्य को समझाते हुए कहा कि देखो तुम किसी की मनोस्थिति को समझे बिना केवल अपनी बात सुनाओगे तो कोई क्यों सुनेगा? यह कितने दिन से भूखा है, तुमने इस पर ध्यान नहीं

दिया, तुमने अपने उपदेशों की झड़ी लगा दी, तो यह कैसे ग्रहण करता इसलिए नीतिकारों ने कहा है कि भक्षयन् किम् न करोति पापम्, भूखा व्यक्ति कौन सा पाप नहीं करता?

इस्क साहेब सों नहीं अंतर, जो अरस परस भीतर।

प्रेम क्या है? अंदर बाहर केवल एक प्रेम तत्व है। हमारे मन में संशय होगा कि क्या मानें, परमधाम में इस्क है, प्रेम तत्व है या नूर तत्व है? जो परमात्मा है उसी को प्रेम कहा गया, उसी को नूर कहा गया, उसी को आनंद कहा गया, सारे लक्षण एक ही हैं जैसे कमल का फूल है, कमल के फूल में क्या विशेषताएं हैं? कमल के फूल में सौंदर्य, कोमलता और सुगंधि तीनों गुण भरे हुए हैं। उसी तरह से परमधाम में जो अनंत सौंदर्य है उसको नूर कहेंगे, प्रेम को भी नूर कहेंगे। जो-जो अक्षरातीत के दिव्य गुण हैं उसके लिए अरबी में नूर शब्द का प्रयोग किया गया है क्योंकि सभी स्वरूपों के लिए एक शब्द जब प्रयोग कर लेते हैं तो उसके अनेकों अर्थ निकल जाते हैं। अक्षरातीत ने परमधाम की आत्माओं के लिए परिक्रमा ग्रंथ दिया, उस परिक्रमा ग्रंथ में जिसमें भ्रमण करने के पश्चात् हमारी आत्मा इस संसार को भूल जाती है।

आप देखिए, जो 25 पक्षों का वर्णन आपको सुनाया जाता है वह क्या हैं? जैसे गंगा के जल का वर्णन करना है तो एक गिलास गंगा का जल लेकर के हम उसकी महिमा गाने लगते हैं कि देखिए एक गिलास में गंगा है, गंगा के जल में यह गुण है। वर्णन तो किया एक गिलास जल का लेकिन लक्ष्य है पूरी गंगा का वर्णन करना। चावल के एक दाने को जब हाथ से दबा लिया जाता है तो पता चल जाता है कि चावल बटलोई में पका है कि कच्चा है। उसी तरह से, **अर्स बका बरनन किया, ले मसाला इतका।** यहाँ के दृष्टांतों से परमधाम की शोभा का वर्णन किया गया है। ऐसा न समझिए कि केवल 50 करोड़ योजन है, वहां के एक योजन में यहां के अरबों-खरबों योजन हो जाएंगे। जितने अनंत की कल्पना हम कर सकते हैं, परमधाम उससे भी अधिक अनंत है। हमारी मानवीय बुद्धि के अंतर्गत यह आने वाला नहीं है इसलिए कहा है - **इस्क राखे नहीं संसार।** जिसके अंदर प्रेम आ गया, उसके अंदर संसार नहीं रह सकता। हमारे अंदर संसार है क्योंकि हमारे अंदर राज जी के लिए प्रेम नहीं है। यदि आपके पास ज्ञान का प्रकाश आता है तो ज्ञान का प्रकाश आपकी आत्मा को अटूट विश्वास दिलाता है। विश्वास का परिपक्व रूप क्या है ? विरह। जिस पर विश्वास होता है तो उस पर हमारी पहचान बढ़ती जाती है। पहचान के पश्चात् क्या होता है? समर्पण। समर्पण जब होता है तो हृदय में विरह प्रस्फुटित होता है कि हम उनको साक्षात् पा जायें और विरह के बिना किसी का हृदय निर्मल नहीं हो सकता। कर्मकांड की भक्ति से किसी का हृदय निर्मल नहीं हो सकता, इसलिए वाणी में कहा है -

विकार सारे अंग के, काम क्रोध दिमाक।
सो बिना विरहा ना जलें, होए नहीं दिल पाक।।13।।

सनंध प्र.27

बिना विरह के आज तक कोई निर्मल हो ही नहीं सका, हिमालय की गुफाओं में बैठकर ध्यान-साधना करना बहुत सरल है लेकिन विरह में तड़पना बहुत ही कठिन है। **मोमिन दिल कोमल कह्या, तो अर्स पाया खिताब।** क्यों कहा जाता है कि ब्रह्म सृष्टियों का हृदय अर्श है क्योंकि इनका मूल संबंध है।

श्रृंगार में एक प्रकरण यह है, **क्यों ना होए प्रेम इनको**, ब्रह्म सृष्टियों में प्रेम क्यों है क्योंकि अनंत प्रेम के सागर से इनका मूल संबंध है इसलिए प्रेम इन्हीं में होगा। एक कारण यह भी है कि ये प्रेम के स्वरूप को हृदय में धारण करती हैं, दूसरा कारण यह है कि इनकी जो अनन्य परा प्रेम लक्षणा भक्ति है, अटूट श्रद्धा, अटूट समर्पण, अटूट विश्वास, यह विरह को पैदा करता है। संसार के जीवों को देखिए, विशेषकर आज के हिंदू समाज में अंधश्रद्धा है, सम्यक् श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा और अंधश्रद्धा में बहुत अंतर होता है। अंधश्रद्धा किसको कहते है? जहां कुछ स्वार्थ होता है बिना विवेक के अपना सब कुछ सौंप देते हैं। जैसे आजकल देखिए साईं बाबा के मंदिर में कोई सोने का रथ चढ़ा देता है, कोई तिरुपति मंदिर में जाकर कुछ और सोना चढ़ा देता है, करोड़ों-करोड़ों का सोना एक ही व्यक्ति चढ़ा देता है। वह सोचता है कि भगवान को मैं एक करोड़ का सोना चढ़ाऊंगा तो मुझे दो करोड़ का लाभ हो जाएगा, वह अपने आत्म कल्याण की भावना से नहीं चढ़ाता। जिसमें कुछ स्वार्थ हो वह प्रेम नहीं है, प्रेम किसको कहते हैं? जिसमें स्वयं को लुटाना होता है। परमधाम की ब्रह्मात्मा राज जी से संसार की कोई उपलब्धि चाहती ही नहीं, सारे ब्रह्मांड का भी राज्य नहीं चाहती। **तीन लोक की साहेबी, सो वारूं तेरे विरहा पर।** एक तरफ राज जी के विरह का सुख हो और एक तरफ तीनों लोकों के ब्रह्मांड का सुख हो तो परमधाम की ब्रह्मात्मा केवल विरह का सुख चाहेगी। विरह का सुख देखने में लगता है कि विरह कष्टदाई है लेकिन विरह का सुख बहुत मिठास से भरा होता है क्योंकि विरह का परिपक्व रूप ही तो प्रेम है।

जब आया प्रेम सोहागी, तब मोह जल लेहेरां भागी। सुहागी प्रेम का तात्पर्य क्या है? जैसे एक पतिव्रता अपना सर्वस्व अपने प्राणेश्वर के लिए सौंप देती है, उसी तरह से एक ब्रह्मात्मा भी अपना सर्वस्व अपने हृदयेश्वर के लिए सौंप देती है और संसार की भक्ति में ऐसा नहीं होता। संसार की जो नवधा भक्ति है, उसमें क्या है? परिक्रमा कर लिए, माला का जप कर लिए, कुछ पाठ कर लिया, कुछ पूजा कर लिया, हृदय तो उसने संसार के लोगों को दे रखा है, हृदय में चाहनाएं हैं कि यदि मेरा इष्ट दर्शन देगा तो मैं इतनी धन संपदा मांगूँगा, इतना हुक्म मांगूँगा, इतना यह मांगूँगा। पौराणिक कथाएं आपको बहुत सुनने को मिलती है कि अमुक व्यक्ति ने विष्णु भगवान से यह माँगा, शंकर जी से यह माँगा, राक्षस तो हमेशा यही माँगते थे कि हमको कोई मार न सके और हम सबको मार दें। जो ऋषि मुनि होते थे, राजा गण होते थे, वह कुछ दूसरा मांगते थे। ब्रह्म सृष्टि सारे ब्रह्मांड का राज्य नहीं माँगेगी, उसके लिए सबसे बड़ी मूल्यवान वस्तु है केवल राज जी का प्रेम, इसलिए कहते हैं कि **इस्क राखे नहीं संसार, इस्क अखंड घर दातार।** जिसके हृदय में प्रेम आ

जाएगा उसके हृदय में संसार नहीं रह सकता। इश्क क्या करता है? अखंड घर दातार, अखंड परमधाम देने वाला है। यदि आपको परमधाम चाहिए तो क्या करना पड़ेगा? आपको अपने अंदर प्रेम पैदा करना पड़ेगा। प्रेम सुधा जो ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, उसमें यही बात दर्शाई गई है कि हमारे हृदय में प्रेम कैसे पैदा हो? हर कोई चाहता है कि हमारे अंदर प्रेम पैदा हो लेकिन प्रेम क्यों नहीं पैदा होता? वाणी इसका स्पष्ट उत्तर देती है।

वचने कामस धोई काढ़िये, कामस काढ़िये, कामस किसको कहते हैं? कालिमा, कालिमा किसकी? माया की कालिमा। माया की कालिमा क्या है? रजस और तमस का विकार जो काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, अहंकार को पैदा करता है, वही है तमस ।

वचने कामस धोई काढिए, राखिए नहीं रज मात्र। रज मात्र का अर्थ क्या है - धूल के कण के बराबर भी अर्थात् नाम मात्र भी आपके अंदर विकार न रह जाए। प्रेम और वासना दोनों में 36 का संबंध है। शारीरिक आकर्षण वासना है जो विकार जन्य आकर्षण है। आकर्षण पवित्र भी हो सकता है। हमारी बहन बहुत सुंदर हो तो हमें अच्छा लगता है, हमारी मां बहुत सुंदर हो तो भी अच्छा लगता है लेकिन यदि हम पराई स्त्री की तरफ दृष्टि करते हैं तो हमारे मन में विकार होता है क्योंकि उसको हम अपना नहीं मानते। शिवाजी के सामने जब गौरबानो लाई गई, शिवा जी ने कहा कि मेरी मां मुझे शिवा कहती है, आप भी मुझको शिवा कहिए। मैं आपको इस तरह से देख रहा था कि आप जितनी सुंदर है, मेरी मां इतनी सुंदर होती तो शायद मैं भी सुंदर होता। यह बात सुनकर गौरबानो की आँखों से आंसू गिरने लगे, कहती है कि शिवा! तुमने अपने मन की कमजोरियों पर विजय प्राप्त की है, एक दिन तुम अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करोगे। यह कौन कह रही है? शत्रु पक्ष की कन्या है, उसके हृदय से आवाज निकल रही है और शिवाजी का चरित्र इतना महान है कि शत्रु पक्ष की कन्या को भी माँ कह करके बोल रहे हैं। यही तो हमारी संस्कृति है। इस सृष्टि के एक मनुष्य शिवाजी में ईश्वरी सृष्टि नहीं थी, ब्रह्म सृष्टि नहीं थी। हम दावा लेकर बैठते हैं कि हम ब्रह्म सृष्टि हैं तो सोचिए हमें अपनी दृष्टि को कितना पवित्र बनाना पड़ेगा।

वचने कामस धोई काढिए, राखिए नहीं रज मात्र।
जोगवाई सर्वे जीतिए, त्यारे थैए प्रेमना पात्र।।8।।
किरन्तन प्र.68

जोगवाई सर्वे जीतिए, जोगवाई का अर्थ क्या है? संसाधन, साधन, हमारे गुण अंग इंद्रियाँ। हम अपनी इंद्रियों को जीत लें, मन को जीत लें, अंतःकरण पर पूर्ण विजय हो तब त्यारे थैए प्रेमना पात्र, तब हमारे अंदर प्रेम की पात्रता आती है लेकिन यह पात्रता कब होगी? जब हम प्रेम के स्वरूप को धारण करेंगे तब हमारे अंदर प्रेम पैदा होगा।

मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। ऋषियों ने कहा है - **अनिष्टकर्म तद्विषयचिन्तनम्।** मनुष्य अपने चिंतन का ही परिवर्तित रूप है। कामविजयात् संकल्पः, संकल्पात् कर्मजायते जब तक काम विकार का चिंतन नहीं करेंगे, आपके अंदर काम विकार पैदा ही नहीं हो सकता। एक परमहंस में और एक सामान्य व्यक्ति में क्या अंतर है? प्रश्न यह होता है कि शुकदेव जी को ही क्यों चुना गया कि वह महारास का वर्णन करें, सामान्य किसी व्यक्ति को क्यों नहीं चुना गया? व्यास जी को भी नहीं चुना गया, किसी विद्वान को भी नहीं चुना गया। शुकदेव जी का हृदय इतना निर्मल था कि वह जानते ही नहीं थे कि स्त्री किसको कहते हैं और पुरुष किसको कहते हैं? जो व्यक्ति स्त्री और पुरुष में भेद कर सकता है वो रास के वर्णन का अधिकारी नहीं हो सकता, उसको वासना नजर आने लगेगी लेकिन जो व्यक्ति स्त्री और पुरुष की परिधि से परे है, वही जान सकता है कि **खिण खिण आलिंघण लीजे,** का अर्थ क्या होगा? अन्यथा एक विकार ग्रस्त व्यक्ति उसी मनोविकारों में जूझता रहेगा और उसका अर्थ भी वैसा ही करेगा। उसी को लक्ष्य लेकर ब्रह्मवैवर्त पुराण जैसे ग्रंथों में अश्लील बातें लिखी गई हैं। जिसका दुष्परिणाम यह है कि आजकल के भौतिकवादी विद्वान रास ग्रंथ का विकृत अर्थ कर बैठते हैं।

प्रेम क्या है? अक्षरातीत के हृदय का बहता हुआ रस ही प्रेम है। इसको कहते हैं **प्रेम बसे पिया के चित।** प्रायः प्रेम और मोह को एक समझा जाता है, प्रेम शब्दातीत है, प्रेम त्रिगुणातीत है।
वाणी कहती है -

प्रेम सब्दातीत तो कह्या, जो हुआ ब्रह्म के घर।
सो तो निराकार के पार के पार, सो इत दुनी पावे क्यों कर।।12।।
परिक्रमा प्र.39

प्रेम का निवास कहाँ है? निराकार के पार के पार। मोह क्या है? मोह तीन तरह का होता है। सात्विक मोह, राजस मोह और तामस मोह। सात्विक मोह किसको कहते हैं? इसको हम शुद्ध रूप में स्नेह कह सकते हैं। गुरु-शिष्य में, मां- बेटे में और भाई-बहन के पवित्र स्नेह में सात्विक मोह होता है। मोह का अर्थ क्या है? आसक्ति। आसक्ति और प्रेम में क्या अंतर है? आसक्ति का क्या कारण होता है? किसी में कुछ विशेषता दिखती है तो हमारी आसक्ति हो जाती है। किसी से मित्रता के कारण आसक्ति होती है, सामाजिक बंधनों के कारण आसक्ति होती है और इसके तीन रूप होते हैं। सात्विक, राजस और तामस। राजस आसक्ति क्या है? उसमें रजोगुण की प्रबलता होती है। सात्विक आसक्ति बहुत गहरी होती है, जैसे गुरु और शिष्य का, भाई और बहन का, माता और पिता का, पिता और पुत्र का जो संबंध होता है बहुत गहरी आसक्ति लिए होता है। एक सात्विक वातावरण में स्नेह की छाया मंडरा रही होती है।

राजसी मोह क्या है? जैसे आप देखेंगे कि ऐसे भी लोग होते हैं जो सोचते हैं कि सारी दुनिया का धन इकट्ठा करके हम अपने बच्चों के लिए दे दें ताकि हमारी कई पीढ़ियां आराम से खाती रहें। इसको कहते हैं राजसिक मोह।

तामसिक मोह क्या है? सिंह क्या करता है, शेरनी क्या करती है? हिरण को मारेगी। दूसरे शाकाहारी प्राणियों को सिंहनी मारेगी और लाकर अपने बच्चों को खिलाएगी। अपने बच्चों का पेट भरने के लिए दूसरों को मारती है। इसको कहते हैं तामसिक मोह। शेरनी के अंदर भी एक मां का हृदय है यदि उसका छोटा बच्चा कुएं में गिर जाए तो उसको भी दुख होता है लेकिन अपने बच्चे का पेट भरने के लिए, हिरण को मारने में उसको जरा भी दया नहीं आती। वो एक दिन में कई-कई हिरणों का शिकार कर देती है और अपने बच्चे को खिलाती है, खुद भी खाती है। संसार के सारे प्राणी मोह के बंधन में बंधे हुए हैं, **जगत् मोहात्मकं प्रागव्यक्ताद् व्यकत्संज्ञकम्** संसार मोहमयी है लेकिन प्रश्न यह है कि क्या हम इन संसार के बंधनों को तोड़ दें? नहीं। यदि पिता और पुत्र में, गुरू और शिष्य में, मां और पुत्र में, पति और पत्नी में माधुर्य संबंध न हो तो क्या होगा? सामाजिक ताना बाना सब छिन्न हो जाएगा और मानव पशु बन जाएगा।

कल्पना कीजिए, मां एक बच्चे को जन्म देती है और जन्म देते ही वह झाड़ी में फेंक आए तो उसका पालन पोषण कौन करेगा? मां के हृदय में जो पुत्र के लिए वात्सल्य स्नेह है, ममता है, यही ममता उस मां को विवश करती है कि स्वयं भूखों रहकर भी उसको खिलाती है। सृष्टि यदि चल रही है तो सात्विक मोह और राजस मोह के आधार पर चल रही है। जहां तामसिक मोह होता है वहां से संघर्ष शुरू हो जाता है। प्रेम सत, रज और तम से परे है। किसी की चाहत यदि त्रिगुणतीत अवस्था में हो तो उसको प्रेम कहते हैं। सतोगुण की अवस्था में वह भी सात्विक मोह है। इसलिए अध्यात्म में आगे बढ़ने वालों के लिए सात्विक मोह आवश्यक कहा जाता है। यदि सात्विक मोह भी नहीं रहेगा तो किसी का भी हृदय पत्थर हो जाएगा, शुष्क हो जाएगा।

जैसे एक बार वल्लभाचार्य जी के पास कोई भक्त आया, वल्लभाचार्य जी ने पूछा कि क्या तुम्हारा किसी से लगाव है? वह भक्त कहता है कि नहीं आचार्य मेरा संसार में किसी से लगाव नहीं है। कोई मर जाए या जी जाए, हमें क्या लेने देना? मैं तो केवल ध्यान साधना करना चाहता हूं, मैं परमात्मा को प्राप्त करना चाहता हूं। वल्लभाचार्य जी ने कहा कि तो यह कैसे होगा? जब तुम्हारा हृदय इतना रुखा हो गया है कि तुम्हारे हृदय में किसी के लिए स्नेह नहीं है, किसी के लिए चाहत नहीं है। चाहना आसक्ति है, लेकिन उसके तीन भेद हैं। सात्विक, राजस और तामस। वल्लभाचार्य जी कह रहे हैं कि तुम्हारे हृदय में किसी के लिए चाहने की प्रवृत्ति ही नहीं है, तो तुम परमात्मा को कैसे चाह सकते हो? मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप संसार की आसक्तियों में फंसिए लेकिन मानवता को जीवित रखने के लिए किसी के प्रति पवित्र चाहत होनी आवश्यक है। यदि स्त्री पति को नहीं चाहे, पति पत्नी को न चाहे, भाई भाई को न चाहे, भाई बहन को नहीं चाहे तो क्या होगा? पशु पक्षियों को

देखिए केवल अपने बारे में सोचते हैं। हां, पशु-पक्षियों में भी ममता दिखती है। एक कुतिया, कहीं से भोजन मिलेगा तो लेकर के भागती है कि मैं अपने बच्चे को खिलाऊं। चिड़िया कहाँ-कहाँ से दाने चुन करके अपने बच्चों के लिए लाती है, यह कौन करवा रहा है? नारी के अंदर ममत्व का दरिया उमड़ता है, किस लिए उमड़ता है? यदि वह ममता न हो तो? जैसे देखते हैं कि सर्पणी जब बच्चों को पैदा करती है तो तुरंत निगलने लगती है। वही सर्प बचे रहते हैं जो भाग जाते हैं, नहीं तो नागिन निगल जाएगी। नागिन के अंदर अपने ही बच्चों के लिए ममता नहीं है। बिलाव या हाथी, नर हाथी क्या करेगा? जब देखता है कि कोई नर बच्चा पैदा हुआ है तो उसको मार डालेगा। उसको द्वेष है कि यह बड़ा होगा तो मेरी बराबरी करेगा। इसलिए नर बिलाव, नर हाथी या कई प्राणी होते हैं जो नर बच्चे को खोजते रहते हैं, मादा को जीवित रहने देते हैं लेकिन नर को मार देते हैं। प्राणियों में भी प्रतिस्पर्धा है। जो नर बिलाव, बच्चे को मार रहा है, वो मादा बिलाव से आसक्ति रखता है लेकिन उसके अंदर तमोगुण है।

मनुष्य जितना अध्यात्म में ऊपर उठता जाता है, वह देवत्व को प्राप्त होता है। देवत्व को जो प्राप्त होगा वह सात्विक स्नेह रखेगा।

जैसे रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद में बहुत आत्मीयता थी। रामकृष्ण परमहंस तो भोले स्वभाव के थे, भावुक प्रकृति के व्यक्ति थे। पहली बार रामकृष्ण परमहंस से मिलन हुआ तब विवेकानंद जी ने भजन गाया था, रामकृष्ण परमहंस मुग्ध हो उठे थे। कई बार विवेकानंद जी को खोजते हुए रामकृष्ण परमहंस जी निकल पड़ते थे। कहते थे कि नरेंद्र तुम आओ। आवश्यकता क्या है? कोई देखेगा तो क्या कहेगा कि ये परमहंस कहलाते हैं, इनको अपने शिष्य पर इतनी ममता क्यों है? कोई भी हंसी उड़ा सकता है और नरेंद्र ने मना किया था कि गुरुदेव आप मेरी खोज में किसी भी सभा में मत आया कीजिए। एक बार रामकृष्ण परमहंस नरेंद्र को खोजते खोजते ब्रह्म समाज में चले गए तो वहां के कुछ लोगों ने हंसी उड़ाई कि देखो नरेंद्र! तुम्हारे गुरुदेव आ गए। विवेकानंद को बहुत पीड़ा हुई और आकर उलाहना में कहा कि गुरुदेव आप ब्रह्म समाज में आए थे वहां आपका अपमान होता है, आप मेरी खोज में क्यों आते हैं? मेरे कहने का आशय क्या है? उसमें आसक्ति है। गुरु शिष्य के संबंधों में आसक्ति है लेकिन वह एक दिव्य आसक्ति है जो संसार की आसक्ति से अलग है। संसार की आसक्ति, रजोगुणी आसक्ति स्वार्थ पर आधारित होती है। पिता धन-संपत्ति में हिस्सा न दे तो पुत्र पिता को घृणा की दृष्टि से देखने लगता है, मोह के कारण। घृणा कहां से पैदा होती है? मोह के कारण। आजकल देखा जाता है कि जो माँ अपने बच्चे का पालन पोषण करती है, स्वयं भूखों रहकर के भोजन कराती है लेकिन जब वही बुढ़ापे में आ जाती है, तो चार बच्चों की माँ असहाय अवस्था में स्वयं को अनुभव करती है। हो सकता है कि उसको किसी अनाथ आश्रम का सहारा लेना पड़ जाए। चार बच्चे अपनी पत्नी की आसक्ति में फंस जाते हैं लेकिन अपनी माँ को छोड़ देते हैं, तो यह क्या है? तामसिक प्रवृत्ति के कारण लेकिन उस माँ के

अंदर सात्विक आसक्ति है। वह किसी भी अवस्था में अपने पुत्रों का अशुभ नहीं सोच सकती क्योंकि वो जननी है, उसने जन्म दिया है, उसके अंदर त्याग की प्रवृत्ति है लेकिन जो त्रिगुणातीत अवस्था है सबसे परे है। त्रिगुणातींत अवस्था कब आएगी? केवल समाधि की अवस्था में। संसार पत्थरों से मार रहा है फिर भी जो समाधि की अवस्था को प्राप्त होते हैं, वह कभी बुरा नहीं सोचते। दयानंद को जिसने विष दिया, दयानंद ने उससे कहा कि तुम जल्दी से नेपाल भाग जाओ, नहीं तो लोग तुम्हें मार डालेंगे। आप होते तो क्या करते? इसको जेल में डालो, इसने मुझे जहर दिया है। दयानंद को मालूम था कि अब मेरा शरीर बचने वाला नहीं है, मैं मरने वाला हूं और जिसने जहर दिया उसको कह रहे हैं कि तुम जल्दी से भाग जाओ। इसको कहते हैं एक ऋषि का दिव्य प्रेम, वो आसक्ति से भी परे है। जो मार रहा है उसको बचा रहे हैं।

एक बार एक ब्राह्मण ने दयानंद को विष खिला दिया। वहां का जो तहसीलदार था वो मुस्लिम था, उसने उसको जेल में डाल दिया। तहसीलदार दयानंद जी का बहुत निकटस्थ था, उसने सोचा कि आज स्वामी जी मेरे ऊपर बहुत खुश होंगे। जब वह आया तो दयानंद जी ने फटकारा कि देखो तहसीलदार साहब, मैं लोगों को कैद में डालने नहीं आया हूं, मैं तो कैद से छुड़ाने आया हूं, भले ही उसने मुझे जहर दिया था, आप उसको छोड़ दो। यह है महानता, इसको कहते हैं आसक्ति से परे होकर के एक दिव्य आत्मिक स्नेह, जिसने भारत का उद्धार किया।

सुंदरसाथ सोच रहे होंगे कि मैं उनकी महिमा क्यों गा रहा हूं? सुंदरसाथ जी हमें दूसरों से गुण ग्रहण करने चाहिए। यदि हम संकुचितता के शिकार हो जाते हैं कि केवल हम अपने समाज की बात करेंगे तो हम कभी आगे नहीं बढ़ पाएंगे। मैं एक सच्ची घटना का वर्णन कर रहा हूं और मैं आशा करता हूं कि सुंदरसाथ को यह बात प्रेरणादाई लगेगी। दयानंद सन्यास के प्रारंभिक जीवन में नर्मदा के किनारे विचरण कर रहे थे। अचानक उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मण लड़के को कुछ लोग बलि चढ़ाने के लिए ले जा रहे हैं और वह इकलौता बेटा था माँ का। उसकी माँ पूरे गाँव के लोगों के पीछे पीछे रोती बिलखती आ रही है कि मेरे बच्चे को छोड़ दो क्योंकि उस गाँव में परंपरा थी कि एक व्यक्ति को प्रतिवर्ष बलि देनी पड़ती थी और बारी के अनुसार उस परिवार का नंबर था। वह अबला रो रही थी लेकिन कोई उनकी सुनने वाला नहीं था। दयानंद का कोई परिचय नहीं था उस परिवार से, उसने कहा कि माता रो नहीं, मैं तुम्हारे बच्चे को बचाऊंगा और दयानंद उस बधिक के पास चले गए। वो तांत्रिक था, भैरव का मंदिर था, कहा कि देखिए मैं भी ब्राह्मण कुल का हूं, आप भैरव को मेरी बलि चढ़ा दीजिए लेकिन इस बच्चे को छोड़ दीजिए क्योंकि मैंने इसकी माँ को वचन दिया है। जो तांत्रिक था, मुख्य पुजारी, उसने कहा कि कोई बात नहीं, हम तुम्हारी बलि चढ़ा देते हैं क्योंकि तुम स्वेच्छा से आए हो। दयानंद ने अपनी गर्दन रख दी, अचानक गोलियों की आवाज सुनाई पड़ने लगी। दयानंद जी आँखें खोलते हैं तो देखा कि यहां तो कोई नहीं है क्योंकि उस समय मराठों के सैनिक आ गए थे बलि प्रथा को रोकने के लिए। मराठे प्रतिबद्ध थे और उन्होंने अपनी सेना भेज दी

थी। दयानंद जी ने सोचा कि यदि परमात्मा ने मेरे प्राणों की रक्षा की है तो मेरे से कोई विशिष्ट कार्य करवाना चाह रहे हैं अन्यथा अब तो एक पल की देर थी क्योंकि बधिक ने तलवार उठा ही ली थी। आप सब सुंदरसाथ तो परमधाम के ब्रह्म मुनि हैं। क्या आप किसी एक अपरिचित बालक की रक्षा के लिए अपनी गर्दन तलवार के नीचे रख सकते हैं? हमारे समाज में क्या कोई उदाहरण मिलेगा? मुझे तो नहीं लगता। हां, हम कुछ और कर सकते हैं लेकिन जानबूझकर तलवार से गर्दन कटाने के लिए कोई तैयार नहीं होगा। इसको कहते हैं निस्वार्थ प्रेम। जिसमें किसी का स्वार्थ न हो, कोई चाहत न हो, उसको कहते हैं प्रेम और इसी प्रेम ने दयानंद को महर्षि दयानंद बनाया क्योंकि उन्होंने निस्वार्थ भाव से एक ब्राह्मण बालक के प्राणों की रक्षा करने का व्रत लिया क्योंकि उसकी माँ के आँसू उनसे देखे नहीं गए। ऐसे ही एक और घटना आती है कि उन्होंने एक कोढ़ी जिसको कोई नहीं पूछ रहा था उसको कंधे पर लादकर, उसको नहलाया, धुलाया। वो कोढ़ी कहने लगा कि स्वामी जी मैं तो मरने जा रहा हूं, लेकिन आप मनुष्य हैं ही नहीं, आप तो देवताओं से भी ऊपर है। सोमनाथ के मंदिर की घटना है, आपने तो इस जगह लाकर, मुझे दर्शन भी करा दिया। अब तो मैं इस दुनिया से जा रहा हूं लेकिन मेरा हृदय कह रहा है कि आप महानता के शिखर पर बैठेंगे।

पत्थर के शंकर जी का दर्शन करने के लिए हजारों की भीड़ है लेकिन जिसके अंदर साक्षात चेतन परमात्मा बैठता है, उसको कोई पूछने वाला नहीं क्योंकि उसके शरीर में कोढ़ है और दयानंद ने उस कोढ़ी को अपने कंधे पर बैठाया और सुरक्षित स्थान पर ले जाकर उसका जितना कुछ उपचार हो सकता था किया लेकिन वह बच नहीं सका। यही दिव्य गुण है। हम मानवता से, निस्वार्थ भाव से, चाहत रखें यदि हमारी चाहना पवित्र है, हमारा हृदय पवित्र है, तो हमारे हृदय में प्रेम का स्फुरण होगा।

यदि आप राज जी का प्रतिदिन ध्यान करें, चितवनी करें तो राज जी क्या हैं? निर्विकारिता की पराकाष्ठा, प्रेम की पराकाष्ठा और उस प्रेम के सागर को अपने हृदय में धारण करेंगे तो आपके विकार दूर होते जाएंगे। आपके अंदर प्रेम का स्वरूप बसता जाएगा और **जब आया प्रेम सोहागी, तब मोह जल लेहेरां भागी।** आप अक्षरातीत को अपना हृदयेश्वर मानेंगे तो ये माया क्या करेगी? सब सुंदरसाथ के लिए एक सुनहरा अवसर है कि राज जी ने आपको अपने प्रेम के स्वरूप की पहचान दी है। प्रेम का स्वरूप कहाँ है? मूल मिलावे में, और कहाँ है? ऊपर तले अर्स ना कह्या, अर्स कह्या मोमिन कलूब। आपकी आत्मा का हृदय ही परमधाम है और उसमें आपका प्राणेश्वर बैठा है। प्रतिदिन सुंदरसाथ को चाहिए कि आँखें बंद करके कुछ क्षण अपने हृदय में अपने हृदयेश्वर की उस मोहिनी सूरत को निहार ले, जिसको देखने के बाद कुछ और देखने की चाहत नहीं रहती, जिसके प्रेम में डूबने के बाद अन्य किसी की चाहत नहीं रहती। सारा संसार ठुकरा भी दे, तो लगता है कि मैं तो प्रेम और आनंद के सागर में हूँ।

मोह के रिश्तों को देखिए, प्रेमी-प्रेमिका होते हैं, कभी खूब लगाव रखते हैं, बाद में विवाह होता है फिर लड़ने लगते हैं और एक दूसरे से तलाक ले बैठते हैं। पिता-पुत्र में अनबन हो जाती है, मां-बेटे में अनबन हो जाती है, भाई-भाई एक दूसरे को देखना नहीं चाहते क्योंकि यहाँ करतार ने सबको स्वार्थमय बनाया है। सो भी कबीले स्वारथी, दुख आए न कोई अपना। यह संसार ऐसा है, कठोरता का संसार है, स्वार्थ का संसार है लेकिन इस संसार में आत्मिक धरातल पर, जो किसी को पवित्र हृदय से चाहता है, तो वह अपने हृदय में प्रेम का एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है, जिस पर चलते-चलते वह प्रेम के अनंत सागर में डुबकी लगाने के योग्य बन जाता है। जब हमारा हृदय इतना पवित्र हो जाए तो समझ लीजिए अब आपके अंदर परमधाम को देखने की क्षमता विकसित हो गई है। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते तो चाहे आप प्रतिदिन कितनी परिक्रमा दीजिए, मैंने कितनी परिक्रमा देने वालों को, पूजा पाठ करने वालों को देखा है, भटकते हुए देखा है लेकिन मैं विश्वास के साथ कहता हूं कि आप प्रतिदिन एक घंटा नहीं, आधा घंटा सच्चे हृदय से राज जी से प्रेम कीजिए, आधा घंटा नहीं हो सकता तो 15 मिनट तो कीजिए ही, जिसमें 15 मिनट के लिए आपका हृदय केवल युगल स्वरूप की छवि में बस जाए और शुद्ध हृदय से पुकारिए कि राज जी! मेरे विकारों को दूर कीजिए, मेरे हृदय में अपना आसन जमा लीजिए, मुझे प्रेम की रसधारा दीजिए। निश्चित है सूरज पश्चिम में उग सकता है लेकिन मुझे विश्वास है कि आपकी मांग अवश्य पूरी होगी लेकिन राज जी से केवल राज जी को मांगिए, राज जी से केवल राज जी का प्रेम मांगिए। हुकुम मत मांगिए, इलम मत मांगिए, कुछ न मांगिए, केवल राज जी से कहिए कि आप मेरे हृदय में आ जाओ।

तुम आए सब आइया लेकिन आप सोचेंगे कि राज जी न आयें, केवल राज जी अपना इल्म दे दें ताकि संसार में मुझे प्रतिष्ठा मिले। कोई हुक्म मांग लेता है कि सारे संसार में मेरा वर्चस्व हो जाए, कोई कुछ धन मांगने लगता है। यह मांगकर क्या करेंगे ? राज जी से राज जी की निधियों को मांगने की अपेक्षा सीधे राज जी को मांगिए, क्योंकि आप हमारे हृदय के हृदयेश्वर हैं तो मेरे ऊपर केवल आपका अधिकार है। मुझे केवल आप चाहिए और यह पवित्र धारणा आपको प्रेम के अखंड मार्ग पर ले चलेगी और जब आप उस मार्ग पर चलने लगेंगे तो आप इत भी धन-धन हो जाएंगे और उत भी धन-धन हो जाएंगे।

।। प्रणाम जी ।।

श्री सागर
तो प्रेम रसायन पीजिए
श्री प्राणनाथ जी वाणी
|| प्रेम खोल देवे सब द्वार ||

ए नैन बान सुभान के, क्यों छोड़ें रूह मोमिन।
ए नैन रस छोड़ आगे चले, रूहें नाम धरत हैं तिन।।118।।
सागर प्र.5

नेत्रों की शोभा को छोड़कर यदि कोई और कहीं चला जाए, तो ऐसे ही हर अंग की महिमा गाई जाएगी। आप चरणकमलों को देख रहे हैं तो चरणों में ही डूबिए, झटके में मत जाइए। अभी मैंने थोड़ी देर पहले दृष्टांत दिया था, जब आप किसी प्रेमी, मित्र या भाई से मिलते हैं, जिससे आपकी आत्मीयता हो, तब नेत्र मिलते हैं और नेत्रों की भाषा मूक होती है। अभिवादन का ध्यान नहीं रहता। अभिवादन तो एक औपचारिकता है, लेकिन यदि वह न किया जाए तो संसार में रिश्ते टूटने लगते हैं - "देखो, हमें प्रणाम नहीं किया।" लेकिन जहाँ गहन प्रेम होता है, **जो के मुख बोले नहीं, नैन देत रोए रोए।**
मुख से ध्वनि नहीं निकल सकती, अभिवादन के लिए हाथ नहीं उठ सकते, प्रेम की भाषा मूक होती है और वह नेत्रों से प्रकट होती है। कोई व्यक्ति मीठी बातें मुख से बोल सकता है, पर उसके भीतर कड़वाहट का ज़हर भी छिपा हो सकता है। लेकिन नेत्रों से कुछ भी छिप नहीं सकता, न घृणा छिप सकती है, न प्रेम छिप सकता है। कोई प्रणाम भी न करे, पर हृदय में प्रेम हो तो प्रेम तो अखंड ही रहता है। मैंने रात्रि को कहा था - प्रेम और मोह में छत्तीस का आँकड़ा है। मोह नश्वर है। वह रिश्तों में बंधा होता है और टूटता रहता है। कभी किसी कामना से बंधन बनता है, तो किसी कारण मनमुटाव से वह टूट जाता है। किसी से हमारे संबंध टूट जाते हैं। लेकिन प्रेम अखंड है। मृत्यु भी प्रेम के बंधन को तोड़ नहीं सकती। यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी हो जाए, तब भी प्रेम को तोड़ा नहीं जा सकता। जबकि धन को लेकर या अन्य कारणों से मोह के बंधन टूटते रहते हैं। आत्मा का संबंध तो अखंड प्रेम से है। मोह का बंधन कब तक रहता है? जब तक शरीर है। शरीर का सौंदर्य जब तक झलकता है, तब तक हर कोई लगाव दिखाता है। लेकिन जैसे ही बुढ़ापा आने लगता है और शरीर का आकर्षण समाप्त होता है, तब दोनों एक-दूसरे को बोझ समझने लगते हैं। संसार में मोह है, प्रेम नहीं। प्रेम तो अखंड है। जैसे अक्षरातीत का स्वरूप अखंड है, वैसे ही अक्षरातीत के हृदय में क्रीड़ा करने वाला प्रेम भी अखंड है। नैन रसीले, रंग भरे - राज जी के नेत्र कैसे हैं? रसीले। किस रस से? वहदत के रस से। नेत्रों में क्या समाया है? वहदत। यदि आप राज जी की उस वाहेदत का रस पाना चाहते हैं, तो आपको निसबत की पहचान करनी होगी।

खूबी क्यों कहूँ निसबत की, वास्ते निसबत खुली हकीकत।
तो पाई हक मारफ़त, जो थी हक निसबत।।3।।
सागर प्र.14

खूबी क्यों कहूँ निसबत की? निसबत के कारण ही हकीकत खुली। निसबत के कारण ही आपको पता चला कि आप राज जी की अंगना हैं। अंगना का अर्थ है अर्धांगिनी। इसे संसार के भावों के अनुसार समझिए। जैसे एक साइकिल में दो पहिए हैं। एक आगे या पीछे का निकाल दीजिए, तो साइकिल नहीं चल सकती। उसी तरह परमधाम की ब्रह्मात्माओं की सुरता इस खेल में आई हैं। राज जी सर्वशक्तिमान भले ही हैं, लेकिन उनकी ब्रह्मानंद लीला तो बंद रहती। सखियों के बिना उनका आनंद-अंग कैसे लीला कर सकता है? इसलिए राज जी भी पूर्ण तभी हैं जब सखियाँ हैं और श्यामा जी हैं। पूर्ण ने पूर्ण को प्रकट किया है। पूर्ण क्या है? मारफ़त का स्वरूप। और श्यामा जी का स्वरूप अपने में पूर्ण है, सखियों का स्वरूप भी अपने में पूर्ण है। लेकिन लीला-रूप में जब उनकी नज़र संसार की ओर जाती है, तो प्रश्न उठता है - राज जी लीला किसके साथ करेंगे? वे सर्वसमर्थ हैं, लेकिन उनकी समर्थता पर भी दो प्रश्न खड़े होते हैं। एक तो—

कोई बात खुदा से न होवहीं, ऐसे न कहियो कोए।
पर एक बात ऐसी बका मिने, जो हक से भी न होए।।32।।
खिलवत प्र.16

राज जी परमधाम से किसी को निकाल नहीं सकते। न किसी को सिफ़ारिश पर, न योगमाया वाले को और न कालमाया वाले को परमधाम में प्रवेश करा सकते हैं। उन्हें यह अधिकार नहीं है। उन्हें यह भी अधिकार नहीं है कि हमारे बिना प्रेम कर सकें, हमारे बिना आनंद में डूब सकें। सब कुछ है क्योंकि हम अर्धांग हैं। जैसे मैंने पहले दिन चर्चा में दृष्टांत देकर कहा था - यदि मेरी आत्मा मेरे शरीर से निकल जाए तो आप क्या करेंगे? थोड़ी देर रोएंगे, शोक मनाएंगे, फिर मिट्टी में दबा देंगे या जला देंगे। तो मेरी आत्मा के कारण ही राजन स्वामी है। उसी प्रकार आपके कारण ही राज जी सच्चिदानंद कहला रहे हैं। यह बात आपको समझनी होगी। आपको अपने अधिकार को पहचानना होगा। कटोरे लेकर भीख माँगने की जो आदत है, इसे बंद करना होगा।
आप कौन हैं? अक्षरातीत आपके प्राणेश्वर हैं, तो आप भी उनकी प्राणेश्वरी हैं। जब तक यह बोध नहीं होगा, सुंदरसाथ अपने अधिकार को नहीं समझेगा। और बिना अधिकार समझे जीवन का लक्ष्य भी पूर्ण नहीं होगा। **नैन रसीले रंग भरे, खैंचत बंके मरोर।**
राज जी के नेत्र कैसे हैं? वहदत के रस में डूबे हुए। नैन रसीले रंग भरे, आनंद के रस से दोनों नेत्र पूर्ण हैं। अभी मैं निसबत की बात कर रहा था। निसबत में क्या विशेषता है? कल मैंने चौपाई बोली थी -

ए क्यों होए बिना निसबतें, इतहीं हुई वाहेदत।
निसबत वाहेदत एकै, तो क्यों जुदी कहिए खिलवत।।27।।
सिनगार प्र.11

निसबत है तो वाहेदत है। निसबत है तो खिलवत है। यह वाणी क्यों आई? निसबत के कारण। राज जी के चरणकमल क्यों आए? निसबत के कारण।

खूबी क्यों कहूँ निसबत की, वास्ते निसबत खुली हकीकत।
तो पाई हक मारफ़त, जो थी हक निसबत।।3।।
सागर प्र.14

निसबत की विशेषता यही है। निसबत के कारण ही हकीकत खुलती है। हक की मारफ़त क्या है?

मारफ़त हुई हाथ हक के, क्यों ले सकिए सोए।
ए दोस्ती तब होवहीं, जब होए प्यार बराबर दोए।।85।।
सिनगार प्र.25

इन चरणों पर हमें ध्यान देना होगा। **ए दोस्ती तब होवहीं, जब होए प्यार बराबर दोए।** राज जी हर पल हमें देख रहे हैं। पर क्या हम राज जी को देखने का प्रयास करते हैं? यहाँ जितने सुंदरसाथ बैठे हैं, यदि मैं पूछूँ, चार घंटे चितवनि वाले कितने हैं? तो शायद कोई-कोई निकलेगा। तीन घंटे वाले कुछ मिलेंगे। दो घंटे वाले थोड़े और मिल जाएंगे। और एक घंटे वाले ज़्यादा निकल आएंगे। हमारे देश-विदेश के सुंदरसाथ में से 80% आज तक नहीं जानते कि 'चितवनि' क्या है। मैंने चर्चनी के बड़े-बड़े विद्वानों को देखा है। वे रात्रि का स्वरूप याद कर लेते हैं और रट्टा लगाते रहते हैं कि हमने चितवनि कर ली। वह चितवनि नहीं है, वह चर्चनी है। चर्चनी को याद करना एक अलग प्रसंग है। चितवनि का तात्पर्य यह है कि आपके मन, चित्त, बुद्धि में कोई प्रक्रिया न हो, और शरीर हिले-डुले नहीं। आप परिक्रमा करते हैं, राज श्यामा, राज श्यामा कहकर, तारतम का पाठ करके। इससे आप भगत जी तो बन जाएंगे, लेकिन राज जी के प्रेमी नहीं बन सकते। राज जी का प्रेमी बनना है तो - **नैनों की चिक डार के, लियो पिया रिझाए।** संसार को पता न चले।

आशिक न्हारे नज़रे, मासूक बैठो रोए।
हेडी कड़े उलटी, आशिक से न होए।।25।।
सिन्धी प्र.7

यदि आशिक अपने प्रेम की व्याख्या संसार को बताने लगे - "देखो, हम इतना प्यार करते हैं, इतना चितवनि करते हैं।" तो वह प्रेम पर दाग लगा रहा है। राज जी की चितवनि के बदले आप संसार में

प्रतिष्ठा की कामना न करें कि लोग आपका सम्मान करने लगें कि देखो, ये इतनी चितवनि करते हैं। प्रेम को छिपाइए, क्योंकि प्रेम आपकी सबसे बड़ी अखंड दौलत है। उसे बाँटिए मत। उसे दिखाकर प्रतिष्ठा मत कमाइए। राज जी जो आपको अपना दीदार और अनुभव देते हैं, उन्हें दूसरों को बताकर प्रभाव मत जमाइए। ऐसा करने से आप अपने प्रेम को बाज़ार में बेच रहे हैं। सभी तो आपके साथ हमदर्दी नहीं रखेंगे। किसी के मन में द्वेष भी पैदा हो सकता है कि इनको इतनी अनुभूति होती है, मुझे क्यों नहीं होती? और जो आपकी अनुभूतियों को सुनेगा, वह आपसे प्रभावित होकर आपकी सेवा करना चाहेगा। इसका तात्पर्य यह है कि आप राज जी के प्रेम को बेचकर अपने लिए सम्मान और सेवा ख़रीदना चाहते हैं। यह भी प्रेम पर एक कलंक है। प्रेम हमारे प्राणों से भी अधिक बहुमूल्य है। उसकी रक्षा करना हमारा नैतिक उत्तरदायित्व है। संसार में जो सतियाँ हुई हैं, उन्होंने अपने प्रेम के लिए जलती हुई चिता में अपने को झोंक दिया। यह एक-दो की बात नहीं है। केवल चित्तौड़ में ही 36,000 क्षत्रियाणियों ने अपने प्राणों की बलि दी थी, चिता में जलकर। हमारी उंगली जल जाए तो तुरंत उस पर दवा लगाते हैं, तो सोचिए उन कोमलांगी क्षत्रियाणियों पर क्या गुज़री होगी? केवल प्रेम की पवित्रता की लाज रखने के लिए, कि हमारे शरीर को मुग़ल स्पर्श भी न कर सके, चाहे वह तुर्क खिलजी हो या बहादुर शाह।

और हम? हम जो अपने को परमधाम की ब्रह्म-सृष्टि कहते हैं, सपने में भी थोड़ा-सा अनुभव हो जाए तो दस लोगों को बताए बिना हमारा भोजन नहीं पचता। क्योंकि सुंदरसाथ में ही हम अपना वर्चस्व दिखाने लगते हैं। यही कहकर 'राज जी' कहलाने की होड़ शुरू हो जाती है। जिसे थोड़ा सा भी अनुभव होता है, वह सभा में बताने लगता है, प्रभाव डालता है और परिणाम क्या होता है? कुछ सुंदरसाथ का एक समूह उसके साथ हो जाता है, कोई उसे राज जी कहने लगता है, कोई श्यामा जी कहने लगता है। लेकिन वह बेचारा यह नहीं सोचता कि उसने अपनी दौलत लुटा दी। इसलिए चाहे सारे ब्रह्मांड का धन भी मिल जाए, प्रेम के धन से बढ़कर कोई संपत्ति नहीं है। मैं एक छोटा-सा दृष्टांत दूँ। महाभारत के युद्ध में अर्जुन के प्राणों पर संकट था। योगेश्वर श्रीकृष्ण, जिन्होंने गीता का उपदेश दिया, हालाँकि 18 अध्याय गीता वास्तव में अलग-अलग समय की रचना है, व्यास जी ने उसे श्लोकबद्ध किया और 700 श्लोकों में, 18 अध्यायों में बाँध दिया। असल में सारतत्व की वार्ता केवल आधे-एक घंटे की रही होगी, दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी थीं, उसके बीच 18 अध्याय कहना संभव नहीं। लेकिन वही योगेश्वर श्रीकृष्ण अर्जुन के स्नेह में बँधकर कहते हैं कि यदि अर्जुन को कुछ हो गया तो मैं भी जीवित नहीं रह सकता। इस भावुकता के पीछे जाने की ज़रूरत नहीं है, कहने का आशय यह है कि श्रीकृष्ण के लिए अर्जुन का प्रेम सर्वोपरि था। यदि बैकुंठ बिहारी के अंदर यह भावना है, तो फिर आप अपने अक्षरातीत के प्रेम को सरेआम बाज़ार में क्यों बेचते हैं? महामति जी की आत्मा कह रही है -

नैन रसीले रंग भरे, खैंचत बंके मरोर।

धनुष को देखिए, जब उस पर बाण चढ़ाया जाता है तो वह टेढ़ा हो जाता है, इसलिए उसे 'बंका' कहा जाता है। 'बंके' यानि टेढ़े। खैंचत बंके मरोर - जब उसे खींचा जाता है तो वह मुड़ जाता है, इसलिए यह चरण आया है - खैंचत बंके मरोर।

सो आसिक रूह जाए न सके, जाए लगें बान ए जोर।

तीर आपने देखा है, उसमें तीन कोने होते हैं। पहला कोना निसबत का। दूसरा कोना वाहेदत का। तीसरा कोना खिलवत का। निसबत-वाहेदत-खिलवत। निसबत के बिना वाहेदत नहीं, निसबत के बिना खिलवत नहीं। जहाँ निसबत है वहीं वाहेदत है, और जहाँ वाहेदत है वहीं खिलवत है। आपको अपनी निसबत की पहचान ही नहीं है। यहाँ जितने सुंदरसाथ बैठे हैं, मैं पूछूँ कि क्या आप निसबत को जानते हैं? आपने चौपाइयाँ पढ़ रखी हैं, तो कह देंगे कि हम निसबत के स्वरूप हैं।

ए जो सरूप निसबत के, काहूँ न देवें देखाए।
बदले आप देखावत, प्यारी निसबत रखें छिपाए।।27।।
सागर प्र.14

निसबत के स्वरूप कौन हैं? सभी सखियाँ और श्यामा जी। और इन निसबत के स्वरूपों को राज जी ने अपने ही सत अंग अक्षर-ब्रह्म से भी छिपा रखा है। तो अक्षर की पंच वासनाएँ, शुकदेव जी जैसे योगी कहाँ से देख सकते हैं? हम सुंदरसाथ चाहे कितनी भी वाणी पढ़ें, सागर-श्रृंगार में डूबें, कितनी भी चितवनि करें, फिर भी विकार हमारा पीछा नहीं छोड़ते। क्योंकि हमारा जीव इतना पवित्र नहीं हो पाया है। शुकदेव कितने पवित्र हैं, जिन्हें स्त्री-पुरुष के भेद का भी पता नहीं। सनकादिक को देखिए, पाँच वर्ष की उम्र से खोज में लगे हैं।

शिव सनकादि आदि के इच्छित, शेष न पाए पार।

पंच वासनाएँ खोज-खोजकर थक चुकी हैं, फिर भी उस अक्षर को नहीं जान पाईं। दुनिया के बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, योगी, यति भी निराकार को पार नहीं कर पाए। चतुष्पाद विभूति बेहद में नहीं जा सकते। बेहद में रहने वाली ईश्वरीय सृष्टि या अक्षर की पंच वासनाएँ अक्षर को अपना सब कुछ मानती हैं, लेकिन वे चतुष्पाद विभूति में ही रहती हैं। अव्याकृत, सबलिक, केवल तथा सत-स्वरूप से आगे वे भी नहीं जान पातीं और अक्षरधाम में जो अक्षर का स्वरूप है, उसे पंच वासनाएँ भी नहीं जानतीं। जो अक्षरधाम में अक्षर ब्रह्म हैं, वे प्रतिदिन चांदनी चौक में जाते हैं, लेकिन उन्हें भी सखियों के श्रृंगार का दर्शन नहीं होता, केवल राज जी के आधे मुखारविंद का ही दर्शन होता है। आप सागर, श्रृंगार पढ़कर भी वही शरीयत, वही कर्मकांड जो सारे देश में चल रहा है। 800 मंदिर बन गए, पर चितवनि कराने वाला कोई नहीं। सुंदरसाथ माला फेरते रहते हैं, पूजा-पाठ और परिक्रमा करते रहते हैं। मुझे खुशी होती है जब यह समाचार सुनता हूं कि आज गुम्मट जी के सामने इतने सुंदरसाथ ध्यान में बैठे थे।

लेकिन जब तक चितवनि की प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ेगी, और हर सुंदरसाथ अपने हृदय के सिंहासन पर अपने प्राणेश्वर का साक्षात्कार नहीं कर लेगा, तब तक ज्ञानपीठ का लक्ष्य कभी पूरा नहीं होगा। आपका शरीर क्या है? हड्डी और मांस का पुतला ही तो है। लेकिन यही साधन है। इसके भीतर जो जीव बैठा है, उसके ऊपर परमधाम की आत्मा परात्म का प्रतिबिंब लेकर विराजमान है। इसी को तारतम ज्ञान के प्रकाश में डुबोना है और इसे इस योग्य बनाना है कि यह दासत्व की भावना को त्याग सके।

पिउ नेत्रों नेत्र मिलाइए, ज्यों उपजे आनन्द अति घन।
तो प्रेम रसायन पीजिए, जो आतम थें उतपन।।40।।
सागर प्र.11

पिया के नेत्रों से नेत्र मिलाइए, पर आप तो देखना भी नहीं चाहते, चरणों को भी अपने हृदय-मंदिर में धारण नहीं करना चाहते। यह ध्यान रखें, वाणी में जहां-जहां चरणों का वर्णन है, वहीं नेत्रों, मुखारविंद और हृदयकमल का भी वर्णन है, और यह यहां के भावों के अनुसार किया गया है। जैसे कोई छोटा बच्चा हो तो उसके सिर पर हाथ रखते हैं।
कोई पूज्य व्यक्ति हो तो उसके चरण छूते हैं, सिर पर हाथ नहीं रख सकते। आप अपने माता-पिता या गुरु-आचार्य के सिर पर हाथ नहीं रख सकते, आपका हाथ उनके चरणों पर ही जाएगा। तो जहां आदरमय प्रेम होता है वहां ध्यान चरणों पर जाता है, और जहां अपना हृदय लुटाने की बात होती है वहां नेत्रों पर जाता है। इसलिए जिनका हृदय प्रेम में डूबने लगा है, वे राज जी के नेत्रों को अपने हृदय में बसाएं। **जो देखे हक नैन को, तो खुले रूह के नैन।**
मेरी आत्मा! यदि तू राज जी के नेत्रों को देखेगी, तो तेरे रूहानी नेत्र खुल जाएंगे। क्योंकि नेत्रों के दर्शन के बाद दासत्व का संस्कार हमारे भीतर रह ही नहीं सकता। एक बार किसी अंग्रेज ने पूछा कि क्या महाराजा रणजीत सिंह की एक आँख खराब है। रणजीत सिंह के अधिकारी ने कहा कि साहब, हमारे महाराजा के चेहरे पर इतना तेज है कि हममें से कोई भी अधिकारी उनकी आंखों में आंख डालकर देखने का साहस ही नहीं कर सकता। इसलिए यह बता भी नहीं सकता कि उनकी आँख कैसी है। आप सोच सकते हैं, नेत्र मिलाने का साहस किसे होता है? उसी को, जिसके पास दृढ़ता और बल हो। जो भय से कांप रहा हो, वह किसी चक्रवर्ती सम्राट के सामने कैसे नेत्र मिला सकता है? लेकिन महारानी का तो अधिकार होता है, क्योंकि वह उनकी अर्धांगिनी है। वैसे ही आप भी हैं। इसलिए वाणी कहती है -
एक रस होइए इस्क सों, चलें प्रेम रस पूर।
फेर फेर प्याले लेत हैं, स्याम स्यामाजी हजूर।।29।।
सागर प्र.11

एक रस होना यही है कि जो आप हैं वही राज जी हैं, वही श्यामा जी हैं, और जो श्यामा जी हैं वही आप हैं। जो दिल राज जी का है वही आपका दिल है। इसे कहते हैं एकरसता। लेकिन जब तक हमारे भीतर नवधा है, तब तक कहा गया है -

तो नवधा से न्यारा कह्या, चौदे भवन में नाहें।
सो प्रेम कहां से पाइए, जो रेहेत गोपिका माहें।।5।।
परिक्रमा प्र.39

गोपियों ने प्रेम किया था। उन्होंने श्रीकृष्ण से कभी कुछ मांगा नहीं। प्रेमी कभी मांगता नहीं है, वह केवल अपना हृदय लुटाता है। परमधाम की ब्रह्मात्माओं को छोड़िए, मैं प्रतिबिंब की सखियों की बात कहता हूँ। जब श्रीकृष्ण मथुरा चले गए, तो उनके वियोग में हर गोपी प्रतिदिन उस रास्ते पर जाकर बैठ जाती थी कि आज हमारा कान्हा आएगा। सुबह से प्रतीक्षा करते-करते शाम हो जाती थी। प्रतीक्षा करते-करते राधा बूढ़ी हो गईं, लेकिन उनका प्रेम वही रहा जो किशोरावस्था में था। क्योंकि प्रेम शरीर की अपेक्षा पर आधारित नहीं होता। श्रीकृष्ण मथुरा से द्वारका भी चले गए, लेकिन राधा के हृदय-मंदिर में केवल कृष्ण ही विराजमान रहे। कृष्ण का स्थान कोई और ले ही नहीं सकता। हम सुंदरसाथ कैसे हैं? हम राज जी से अधिक प्रेम पत्नी से करते हैं, पति से करते हैं, बच्चों से करते हैं, संग-संबंधियों से करते हैं, धन-संपदा, प्रतिष्ठा और वर्चस्व से करते हैं। हमारे हृदय का जो सिंहासन है, वह पहले से ही इन माया के कचरों से भरा हुआ है। ऐसे में राज जी के चरण-कमल वहां कैसे विराजें? इसलिए कहा है - **सो आसिक रुह जाए ना सके, जाए लगें बान ए जोर।**

जिसको राज जी के नेत्रों का बाण लग जाता है, उसकी आत्मा नेत्रों को छोड़कर कहीं और जाना ही नहीं चाहेगी। नेत्रों के वर्णन से पहले कानों का वर्णन हुआ, क्योंकि कानों की शोभा में भी अनोखा आकर्षण है। यही कान हमें राज जी की अमृत से भी अनंत गुना मीठी वाणी सुनने का अधिकार देते हैं। इसलिए जो कानों की शोभा में डूबा है, वह नेत्रों की ओर नहीं जाएगा। लेकिन जो नेत्रों में लग गया, वह नेत्रों को छोड़कर कहीं और, यहां तक कि हृदय में भी नहीं जाएगा। हृदय में तो सारा इश्क का रस है, जो हृदय में डूब गया, वह फिर और कहीं नहीं जाएगा। हर अंग की अपनी विशेषता है, हर अंग में बराबर का गुण है। लेकिन हम माया के संसार में रहते हैं, इसलिए नेत्रों के माध्यम से उस अनंत प्रेम को समझाने का प्रयास किया जाता है। क्योंकि हमारी मानवीय बुद्धि उस अनंत वाहेदत, अनंत प्रेम और अनंत आनंद को कभी पूरी तरह नहीं समझ सकती। जीव करे भी क्या - हद का जीव है। इस बेचारे ने कभी प्रेम की असली सुगंध ही नहीं पाई। जिस नारायण से यह जीव प्रकट हुआ है, वह नारायण की चेतना का ही प्रतिभास है। पर उस नारायण को निराकार से परे की

सुध नहीं, वह त्रिगुणात्मक जगत में बंधा हुआ है। जिसे प्रेम की रसधारा का अनुभव ही नहीं, वह अपने प्रतिबिंब- स्वरूपों को प्रेम क्या बताएगा?

इसलिए कहा गया है - **चौदे भवन में न पाइए, सो हुआ हाथ हबीब।**

चौदह लोकों में आत्म-रोग की औषधि कोई नहीं दे सकता। यह औषधि केवल राज जी के पास है। ऐसा बाण, जिसका अग्रभाग निसबत है और पीछे के दोनों कोने वाहेदत और खिलवत हैं। जिस छाती में वह बाण चुभ जाए, वह आत्मा नेत्रों को छोड़कर कहीं नहीं जाएगी। और यह बाण नेत्रों से ही निकलता है। हर कवि ने इस भाव को अपने-अपने ढंग से कहा है। जैसे संस्कृत कवि भर्तृहरि ने लिखा है - तलवारों और भुजाओं के बल से हाथियों के मस्तक काटना कोई बड़ी बहादुरी नहीं, यह तो कोई भी कर सकता है। पर रमणी के नेत्रों के बाणों से जो अपनी रक्षा कर ले, वही सबसे बड़ा वीर होता है। मैं संसार का दृष्टांत दे रहा हूं। जिनसे हमारा कोई प्रेमभाव नहीं होता, उनसे अपराध हो जाए तो हम नेत्र चुराते हैं। क्यों? क्योंकि नेत्रों पर दृष्टि पड़ने पर यह भय रहता है कि हम उनके प्रेम-जाल में फंस जाएंगे। यही कारण है कि योगी-महात्मा उपदेश देते हैं कि रमणी के नेत्रों की ओर मत देखो। क्योंकि यदि देख लिया, तो उसके प्रेम-बंधन से छूटने की शक्ति आपमें नहीं होगी।

अब एक ऐतिहासिक घटना सुनिए। एक राजा की राजकुमारी बहुत सुंदर थी। राजा ने सोचा कि इसे विदुषी बनाना है। एक युवा और अत्यंत सुंदर विद्वान मिला। राजा को संदेह हुआ कि युवा शिक्षक और राजकुमारी के बीच विकृति फैल सकती है। इसलिए उसने कहा - "आचार्य! मेरी पुत्री अंधी है। मैं चाहता हूं कि आप दोनों के बीच एक पर्दा रहे। आप पढ़ाइए, वह सुनेगी।" आचार्य तैयार हो गए। एक दिन पढ़ाते-पढ़ाते आचार्य ने राजकुमारी को डांट दिया। राजकुमारी को बुरा लगा और उसने कटु शब्द कह दिए। आचार्य को भी बुरा लगा और उन्होंने कह दिया - "मेरा भी दुर्भाग्य है कि मुझे तुझ अंधी को पढ़ाना पड़ रहा है।" यह सुनकर राजकुमारी आहत हुई - "मैं अंधी थोड़े ही हूं!" और उसने तुरंत पर्दा हटा दिया। बस, नेत्रों की दृष्टि मिली और दोनों स्तब्ध रह गए। इसके पहले न उन्होंने किसी को देखा था, न किसी ने उन्हें देखा था। शिष्य और शिक्षक का जो बंधन था, वह नेत्रों की दृष्टि मिलते ही टूट गया। आचार्य अपना आचार्यत्व भूल गए और राजकुमारी भी भूल गई कि वह शिष्या है। दोनों में प्रेम-संबंध हो गया। जब राजा को पता चला तो उसने आचार्य को फांसी का आदेश दिया। फांसी के समय आचार्य के मुख से संस्कृत के श्लोक धारा प्रवाह निकलते रहे। उन जैसा कोई विद्वान पूरे राज्य में नहीं था। जैसे ही फंदा आने लगा, राजकुमारी पिता के चरणों में गिर गई - "पिताजी, इनके बिना मेरा जीवन नहीं। मैं आपकी इकलौती पुत्री हूं। यदि मुझे जीवित रखना चाहते हैं तो इनसे मेरा बंधन कर दीजिए। यह सब मेरी इच्छा से हुआ है, इन्होंने कुछ नहीं किया।"

इसी तरह एक और घटना मध्यप्रदेश के एक राजघराने के राजकवि की भी है, यह भी सत्य घटना है। सुंदरसाथ जी, मैं कहानियाँ सुनाने नहीं बैठा हूं। मैं आपके हृदय की कठोरता दूर करने के लिए दृष्टांत दे रहा हूं। हम सुंदरसाथ कब तक केवल नवधा भक्ति करेंगे? प्रेम की गति क्या होती है?

नेत्रों से नेत्र मिलने के बाद क्या स्थिति होती है? हम चितवनि करते हैं, पर सरसरी नजर से राज जी के नेत्रों को देखते हैं। हमें राज जी की पुतली में देखना है। ताकि उनकी पुतली में हमारा प्रतिबिंब झलके और राज जी भी विवश होकर हमारी पुतली में देखें। हम उनके चरणों में केवल सिर पटकने के लिए नहीं आए। सिर पटकना दासों का काम है। दास-भक्ति करने वाले तो लाखों सुंदरसाथ हैं। आपको वाणी का जो रस मिल रहा है, वह आपका अधिकार है, इसे लीजिए।

रीवा राज्य की एक पुरानी घटना है। एक राजकवि बाग में लेटे हुए थे, आम के पेड़ों पर फल लगे थे। राज-नर्तकी की किशोरावस्था की पुत्री वहाँ आई और राजकवि भी किशोरावस्था से कुछ ही बड़े थे। वह अल्हड़ लड़की पत्थर मारकर आम गिराना चाहती थी, लेकिन संयोग से पत्थर राजकवि पर जा गिरा। राजकवि का शरीर खून से तर-ब-तर हो गया। यह देखकर लड़की का हृदय पीड़ा से भर उठा और दोनों के बीच आसक्ति का बीज पनप गया। जब यह बात राजा तक पहुँची तो राजकवि को देश से निकाल दिया गया। उस समय ऐसा ही होता था, तुरंत दंड मिलता था, या तो फाँसी या राज्य से निष्कासन। राजकवि को 14 वर्षों के लिए निष्कासित किया गया। इस दौरान वे प्रेम-रस में डूबे रहे और एक ग्रंथ की रचना कर डाली। चौदह वर्ष बाद जब उन्हें राज्य में वापस बुलाया गया, तब नर्तकी की पुत्री की दशा अत्यंत दयनीय थी। उसका शरीर केवल हड्डियों का ढाँचा रह गया था, मांस बिल्कुल नहीं था, और त्वचा सूखी-सी लग रही थी। आजकल जिसे लोग दिखावटी प्रेम कहते हैं, वह प्रेम नहीं होता। उस समय न मोबाइल था न कोई और साधन। चौदह वर्षों तक दोनों ने न एक-दूसरे की आवाज सुनी, न दर्शन किया। दोनों ही विरह में सूखकर काँटे जैसे हो गए थे। राजा ने राजकवि से पूछा - "तुमने इन 14 वर्षों में क्या किया?" राजकवि ने उत्तर दिया - "मैंने प्रेम पर महाकाव्य लिखा है।" राजा ने सुनाने को कहा, तो कवि ने एक पंक्ति सुनाई - "प्रेम को पंथ के राल कहाँ, महा तलवार की धार पर धावन है।" राजा मुग्ध हो गए और बोले - "मांगो, जो भी चाहो मैं देने को तैयार हूँ।" वही राजा जिसने कभी उन्हें दंड देकर देश निकाला दिया था, आज कह रहा था - "मांगो।" राजकवि ने निवेदन किया - "मुझे नर्तकी की पुत्री से केवल मिला दीजिए।" राजा ने आदेश दिया और पुत्री को लाया गया। बेचारी इतनी कमजोर हो चुकी थी कि चलने की ताक़त भी नहीं थी। उसका शरीर हड्डियों का ढाँचा बन चुका था। यह देखकर राजा की आँखों से भी आँसू बह निकले और उन्होंने कहा - "यदि दोनों का इतना पवित्र स्नेह है तो मैं इनका विवाह करवा देता हूँ।" यह संसार के मिट्टी के पुतलों, जीवों के सच्चे स्नेह की कहानी है। सागर की चर्चा में मुझे यह प्रसंग नहीं कहना चाहिए था, लेकिन मैंने देखा है कि पिछले 300 वर्षों से प्रेम के शब्द-सार को छोड़कर केवल शरीयत का डंका बजाया जा रहा है। शरीयत के नाम पर हकीकत और मारिफ़त को कौन मानता है?

याद रखिए, पन्ना जी में 10 वर्ष तक (1740 से 1750–51) ब्रह्म-सृष्टियों की जागनी की लीला रही। उसके पश्चात लगभग 30 वर्ष तक (1745 से 1775) ईश्वरीय सृष्टि की लीला हुई। और 1775 से

1845 तक के 70 वर्षों में केवल जीव-सृष्टि की जागनी की लीला रही, जहाँ कर्मकांडों की अधिकता हो गई। अब तो मुझे कोई डर नहीं रहता। पहले जब मैं रतनपुरी आश्रम में रहता था, तो डर के कारण आरती में जाना पड़ता था, तालियाँ बजानी पड़ती थीं। यदि न बजाओ तो गेट से बाहर कर दिया जाता था। उस समय किसी आश्रम में जाओ तो पहले ही कह दिया जाता था कि भाई, स्वरूप पढ़ो। मुझे स्वरूप याद ही नहीं हो पाया, मैंने बहुत कोशिश की।

चौपाइयाँ तो सब याद थीं, पर स्वरूप का क्रम याद नहीं हो सका। मैं सेवा-पूजा का विरोध नहीं करता। सेवा-पूजा कीजिए, बच्चों से भी कराइए, लेकिन जब आपकी उम्र 15 वर्ष से अधिक हो जाए तो चितवनि में अधिक समय दीजिए। मैं यह नहीं कहता कि सेवा-पूजा छोड़ दीजिए। घर में सेवा-पूजा करवाने से बच्चों में भाव उत्पन्न होता है। परंतु यदि आप सेवा-पूजा में एक घंटा लगाते हैं, तो 15 मिनट में वह कर लीजिए और शेष 45 मिनट चितवनि में लगाइए, मैं केवल इतना ही कहता हूँ।

मेरे कहने का यह अर्थ निकाल लिया जाता है कि मैं सेवा-पूजा का विरोध करता हूँ। ऐसा नहीं है। घर में संस्कार देने के लिए सेवा-पूजा आवश्यक है। घर-घर में वाणी का होना आवश्यक है। सबके गुण, कर्म और स्वभाव समान नहीं हो सकते। इसलिए सभी न तो सेवा-पूजा कर सकते हैं, न सभी चितवनि कर सकते हैं। 12 वर्ष का बच्चा, जिसका मन चंचल है, वह कहाँ से चितवनि करेगा? हाँ, वह आरती-पूजा कर सकता है, मेहर सागर का पाठ कर सकता है। 8 वर्ष का बच्चा भी आँखें बंद कर "राज-श्यामा, राज-श्यामा" जप कर सकता है। लेकिन यदि आप 70 वर्ष की उम्र में भी केवल वही सेवा-पूजा कर रहे हैं और चितवनि नहीं कर रहे हैं, तो मेरी दृष्टि में आप कहीं-न-कहीं भटकाव के शिकार हो रहे हैं। इसीलिए सागर की वाणी आपको अधिकार देती है।

पिउ नेत्रों नेत्र मिलाइए, ज्यों उपजे आनन्द अति घन।
तो प्रेम रसायन पीजिए, जो आतम थें उतपन।।40।।
सागर प्र.11

इस प्रकरण की एक विशेष चौपाई है:
जो चल जाए सारी उमर, तो क्यों छोड़िए सुख नैनन।
राज जी के नेत्रों का सुख क्या है?

जो चल जाए सारी उमर, तो क्यों छोड़िए सुख नैनन।
इन सुख से क्यों अघाइए, आसिक अंतस्करन।।122।।
सागर प्र.5

आप इस आनंद के रस में डूबते जाइए, डूबते जाइए, इसका ओर-छोर कभी नहीं मिलेगा। राज जी ने आपको रोने के लिए संसार में नहीं भेजा है। दुख दे घर बोलावहीं, अपने घर नहीं एह रसम। **राज जी रोते हुए आपको परमधाम नहीं ले जाएंगे, बल्कि हँसते उठे घर धाम।**

आप संसार में आए हैं, राज जी के हृदय में डुबकी लगाने के लिए। आप कभी असहाय न बनें। अक्षरातीत की अर्धांगिनी होकर यदि आप संसार के सामने अपना दुखड़ा रोएंगे तो संसार क्या सोचेगा कि यह ब्रह्ममुनि भी दुखी हैं तो हमारा कल्याण कैसे हो सकता है। आप संसार को अखंड करने आए हैं। आप आनंद स्वरूप श्यामा जी के अंग हैं, सच्चिदानन्द परब्रह्म की अर्धांगिनी हैं। इसलिए आप सोचिए, प्रेम और आनंद का सागर आपके भीतर क्रीड़ा कर रहा है। हर पल मुस्कुराते रहिए। संसार में कष्ट अवश्य आएंगे - धन का कष्ट, रोग का कष्ट, अपमान का कष्ट, परंतु जब आपके हृदय में प्रेम का सागर उमड़ रहा है तो आपको अपनी पहचान करनी होगी। आप स्वयं को पहचान नहीं पा रहे हैं। जैसे शेर का बच्चा भेड़ों के झुंड में पलकर स्वयं को भेड़ समझने लगता है, वैसे ही माया के जीवों की दुनिया में आकर आप भी अपनी गरिमा भूल गए हैं। क्योंकि आपका जीव लाखों जन्मों से राग-द्वेष के बंधनों में रहा है, विषय-विकारों में फँसता रहा है। इसलिए जीवभाव को हटाइए, आत्मभाव को जागृत कीजिए और जीव को भी फटकारिए - “हे जीव, तू शरीरभाव लेकर बैठा है, इसे छोड़। तू अपने निजस्वरूप को जान और मुझे अपनी परात्म का श्रृंगार कर अपने प्राणेश्वर को रिझाने दे।”

राज जी के नेत्रों की शोभा में डूबते-डूबते एक समय ऐसा आएगा जब आप राज जी से एकरस का अनुभव करेंगे। एकरस का अनुभव क्या है? राजा सिंहासन पर बैठा हो और मंत्री से कहा जाए - “तुम भी बैठ जाओ”, तो मंत्री कहेगा, “क्या मुझे फाँसी पर चढ़ना है?” प्रधानमंत्री भी राजा की बगल में बैठने का साहस नहीं करेगा। पर महारानी को अधिकार है। यदि दो के बैठने का सिंहासन हो और उसे लगे कि राजा जी अधिक जगह घेरे बैठे हैं तो वह कहेगी - “ज़रा खिसकिए।” उसे अनुमति माँगने की आवश्यकता नहीं। वह तो अधिकार से कहेगी - “और खिसकिए, मुझे बैठना है।” प्रधानमंत्री या प्रजा ऐसा नहीं कर सकते। राम की बगल में सीता बैठेंगी, लेकिन हनुमान जी क्या सीता की जगह बैठ सकते हैं? कितनी भी भक्ति करें, हनुमान जी तो दास ही रहेंगे, सीता नहीं बन सकते। आप परमधाम की ब्रह्मात्मा हैं, अपने अधिकार को समझिए। सागर की वाणी में, श्रृंगार की वाणी में डुबकी लगाकर मैं देश-विदेश में वाणी की चर्चा सुन रहे सभी सुंदरसाथ से यही कहता हूँ -

तो नवधा से न्यारा कह्या, चौदे भवन में नाहें।
सो प्रेम कहां से पाइए, जो रेहेत गोपिका माहें।।

आपके नेत्र भी प्रेम का सागर हैं, प्रेम के प्याले हैं। उन्हीं नेत्रों में राज जी अपने हृदय की सुराही से अनंत इश्क़ का रस लुटाने के लिए बेकरार हैं। दोष राज जी का नहीं, हम स्वयं ही अपनी पलकों

को बंद कर लेते हैं कि अमृतरस भीतर न प्रवेश करे। जो हमारी सेहेरग से नजदीक हैं, हम उन्हें खोजते फिरते हैं - कभी इस मंदिर में, कभी उस मंदिर में, कभी पैदल यात्राओं में महीनों भटकते हैं। शरीर को जितना कष्ट पैदल यात्रा में देते हैं, उतना ही आसन जमाकर बैठ जाइए।

फेर बैठे मांहें आसन कर, महामति हिरदे अपंग।

महामति जी की आत्मा कहती है कि राज जी मेरे टूटे हुए हृदय में आसन मारकर बैठ गए हैं। आप भी चितवनि के लिए आसन जमाइए। जब तन का आसन जमेगा तो मन का भी आसन जमेगा। और जब मन का आसन जम जाएगा तो राज जी आपके हृदय के सिंहासन पर अखंड रूप से विराजमान हो जाएंगे। यही जागनी का अंतिम लक्ष्य है और मैं आशा करता हूँ कि सुंदरसाथ इस ओर चलने का प्रयास करेंगे।

ल्याओ प्यार करो दीदार

क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।
ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन।।

।। प्रणाम जी ।।

श्री सिनगार

तब निज सूरत रूह की, उठ बैठी परवान।

श्री प्राणनाथ जी वाणी

वस्तर भूखन हक के, आए हिरदे ज्यों कर।
त्यों सोभा सहित आतमा, उठ खड़ी हुई बराबर।।68।।
सिनगार प्र.4

प्राणेश्वर अक्षरातीत ने श्रृंगार के इस चौथे प्रकरण में जागनी का वास्तविक रहस्य क्या है, यह हमें समझाया है। जागनी के ब्रह्मांड में जागनी की लीला चल रही है। हम आए हैं, किसलिए? माया का खेल देखने और इस माया के खेल में हमें निद्रा मिली है जिसको अरबी में फ़रामोशी कहते हैं। हर सुंदरसाथ जागृत होना चाहता है लेकिन जागनी क्या है, यह यथार्थ रूप से समझना है। मैं आपको एक दृष्टांत देता हूं, उससे पता चलेगा कि जागनी कहते किसको हैं?
जैसे आप सरसावा में सो गए, सोते समय आप गहरी निद्रा में चले गए, स्वयं को भूल गए। पुनः एक अवस्था आती है, आप स्वप्न देखने लगते हैं, स्वप्न में आप स्वयं को दिल्ली में देखते हैं। दिल्ली में ऐसा लग रहा है कि किसी दुकान से आप कुछ खरीदने जा रहे हैं, किसी से झगड़ा होता है और दुकानदार आपको एक चांटा मार देता है, आप क्या करते हैं? दो स्थितियां होंगी कि आप स्वप्न में बड़बड़ाने लगेंगे, आपका हाथ भी उठ जाएगा लेकिन आपको कुछ पता नहीं कि मैं भी किसी को अपशब्द बोल रहा हूं या मैं भी चांटा मारने का प्रयास कर रहा हूं। दूसरी स्थिति यह भी हो सकती है कि आपकी आँखें खुल जाएँ और आँखें खुलने के साथ आप स्वयं को देखने लगें कि अरे जो मैं दिल्ली का दृश्य देख रहा था वह तो झूठा था। मैं तो सरसावा में सो रहा हूँ। आँखें खुल जाएंगी तो आप अपने को देख लेंगे लेकिन जब तक आपकी आँखें नहीं खुली हैं तब तक आप अपने को कहाँ देख रहे हैं कि मैं दिल्ली में हूँ। आपकी कई अवस्थाएं हैं, आपको लगता है कि मैं हूँ, लेकिन मेरा स्वरूप क्या है? यह पता नहीं है। स्वप्न की अवस्था में कभी आप दिल्ली में अपने शरीर को देखते हैं लेकिन सरसावा वाले शरीर को नहीं देखते हैं तो आप क्या सोचते हैं कि मैं दिल्ली में हूँ। मैंने कहा कि सपने में कितनी प्रक्रियाएं होंगी निद्रा के प्रभाव में आप बड़बड़ाते हैं, सब कुछ करते हैं, वैसे ही इस जागनी के ब्रह्मांड में हमारे साथ हो रहा है।

तुम देखत मोहे इन इंड में, मैं चौदे तबक से दूर।
अंतरगत ब्रह्मांड तें, सदा साहेब के हजूर।।18।।
किरन्तन प्र.65

तुम देखत हो मोहे इन इंड में - कौन कह रहा है ? श्री महामति जी के स्वर हैं ये कि साथ जी, आप मेरे इस मिहिरराज के तन को इस ब्रह्मांड में देख रहे हो, मैं 14 तबक से दूर। कौन दूर है?

मिहिरराज का तन यहाँ का है तो 14 लोकों से परे कौन है? परमधाम में कौन विराजमान है? इंद्रावती की परात्म। इंद्रावती की आत्मा कहाँ आई है? इस खेल में। अंतरगत ब्रह्मांड तें, सदा साहेब के हजूर। उनका मूल तन मूल मिलावे में है और आत्मा का तन इस खेल में दिखाई दे रहा है, जीव का तन है जिस पर अधिष्ठान बनाकर आत्मा इस खेल को देख रही है। आप सोच सकते हैं वाणी में हर जगह कहा है कि परात्म वहीं पर है। एक विचारधारा ही चल पड़ी कि न कोई आया है न कोई जाएगा।

चौपाई का उदाहरण दिया - **ना कित आइयाँ, ना कित गइयाँ, बैठी मूल वतन** बात तो सही है। मूल तन से कोई आया नहीं है और मूल तन से कोई जाएगा नहीं, मूल तन तो जैसा का तैसा है। आत्मा का तन खेल में आया है। आत्मा का तन कैसे आता है? आपको एक दृष्टांत से समझा दूँ।

जैसे सरसावा में आप सो रहे हैं, आपका जो वास्तविक तन है, यह तो यहीं रहेगा, आपका मन भी यहीं रहेगा लेकिन मन की तरंगें निद्रा में एक नए संसार का सृजन करती हैं। निद्रा का आवरण पड़ते ही मन की तरंगों ने आपका हूबहू रूप धारण कर लिया और अपने संस्कारों के अनुसार दिल्ली की रचना कर लेते हैं। दिल्ली में आपका मन आपके उस शरीर का प्रतिबिंबित शरीर लेकर स्वयं को प्रस्तुत कर देता है। मन यहीं होता है, मन नहीं निकलता। **मनः विलीयते, प्राणास्तत्रैव विलीयन्ते**, जहां मन विलीन होगा वहां प्राण भी विलीन होगा। जैसे मन यहीं रहेगा, मन की तरंगें जाएँगी। इसी तरह से परात्म का तन परमधाम में है और परात्म का प्रतिबिंब है आत्मा। दिल की इच्छा है कि माया में जाकर माया का खेल देखूँ, इसलिए खेल में आत्मा का तन आएगा।

सिफत ऐसी कही मोमिनों, जाके अक्स का दिल अर्स।
हक सुपने में भी संग कहे, रूहें इन विध अरस परस।।81।।
सिनगार प्र.21

हक सुपने में भी संग कहे, राज जी भी हमारे साथ हैं स्वप्न में, वे स्वप्न में आए हैं अपने आवेश स्वरूप के साथ। एक पल के लिए भी चाहे परात्म का तन हो या आत्मा का तन हो, राज जी का वियोग नहीं हो सकता।

जैसे माया की निद्रा में हम आए हैं तो अपने मूल घर को नहीं देख रहे हैं, मूल परात्म के तन को नहीं देख रहे हैं। एक प्रश्न यदि मैं आपसे पूछूं कि मूल मिलावे में तो सभी दाड़िम की कलियों की तरह, अनार के दानों की तरह बैठे हैं कि **आवे ना निकसे इतथें, बीच हाथ न अंगुरी माग।** न तो अंगुली घुसा सकते हैं, न कोई उसमें से निकल सकता है, न कोई जा सकता है, सभी सट करके इस तरह से बैठे हैं कि कहीं भी अंगुली घुसाने की जगह नहीं है।

जितने परमहंस हैं उनकी परात्म ने तो देखा नहीं कि मूल मिलावा कैसा है? चलिए मूल मिलावा

तो मान लेते हैं कि सुरता चली गई, पुखराज को कैसे देखा, हौज कौसर को कैसे देखा, मानिक पहाड़ को कैसे देखा, 25 पक्षों में कैसे परिक्रमा कर ली, कैसे युगल दास जी ने एक एक चीज कह करके बताया कि इतनी लंबी है, इतनी चौड़ी है क्योंकि सबकी परात्म पर समान फरामोशी है, सब में वाहेदत है तो एक को दिखाई पड़ रहा है, एक को नहीं दिखाई पड़ रहा है, कैसे संभव है ? इसमें एक गहरा रहस्य छिपा हुआ है।

देखिए आपकी जागृति की दो अवस्थाएं हैं, एक तो जब आपकी आँखें खुल जायें, जैसे सरसावा में आप सो रहे हैं, आप स्वप्न में दिल्ली चले जाते हैं, आपको इतना जोर का कोई चांटा मार दे कि उस चांटे के प्रभाव से आपकी निद्रा भंग हो जाए तो आप उठ के देखते हैं कि अरे, मुझको किसने चांटा मारा? बिस्तर पर उठ जाते हैं, आँखें खोल लेते हैं तो आपको लगता है कि मैं सरसावा में सो रहा था, मैं स्वप्न में दिल्ली पहुँच गया था, इसको कहते हैं परात्म की जागनी। एक दूसरी अवस्था भी होती है, जब आप स्वप्न देख रहे होते हैं, दिल्ली पहुँचे होते हैं, तो स्वप्न में ही आप अपने तन को देख रहे होते हैं कि मैं दिल्ली आया हूँ। आपको अपना चेहरा भी दिखाई देता है, सपने में आप बात भी कर रहे होते हैं और सपने में आप मारपीट भी कर रहे होते हैं, देखते हैं न?

हमारे समाज के एक विद्वान हैं, चर्चनी के बहुत एक्सपर्ट, कभी पास में सोना होता था, तो रात को सपने में भी बड़बड़ाते थे, पुखराज, हौज कौसर ,माणिक पहाड़ क्योंकि वो चर्चनी रटा करते थे और संस्कारवश सपने में भी बस उनको वही याद रहता था। वैसे ही, जैसे जब आप वाणी पढ़ते हैं तो क्या स्थिति होगी? आपके अंदर विवेक जागृत होगा, आप चितवनी की राह पर चल पड़ते हैं। परात्म में तो फरामोशी है लेकिन प्रश्न यह है कि आपको अपना स्वरूप कब दिखाई देगा कि आप कौन हैं ?

जैसे मैंने कहा जब तमोगुण का प्रभाव कम होता है, जब गहरी निद्रा होती है, तमोगुण के गहन प्रभाव के कारण तो छह घंटे कैसे बीत गए आपको पता ही नहीं चलता। स्वप्न में कुछ-कुछ आभास रहता है कि मैं स्वप्न देख रहा हूं लेकिन उसी में जो ध्यान की अवस्था में डूबे रहते हैं, केवल उनको यह अधिकार होता है कि स्वप्न में भी उनको ऐसा लगता है कि मेरा शरीर है। सामान्य व्यक्तियों पर यह घटित नहीं होगा। केवल योगी महात्मा जो ऊँचे स्तर की साधना करते हैं, केवल वह जान सकते हैं कि स्वप्न देखते हुए भी उनको अपने तन का आभास रहता है कि मेरा यह रूप है और उनको अपने वास्तविक स्वरूप के बारे में भी थोड़ी सी झलक मिलती है। बस यही कहानी है इस संसार में जागनी की।

परआतम को आतम देखसी, तब उतर जासी सब फेर जी। हमारी आत्मा परात्म को देखे, आत्मा से परात्म को देखा जाएगा। दिल्ली में जो आपका तन गया है, वह क्या है? आत्मा। सरसावा में जो सो रहा है, वह क्या है? परात्म। परात्म में तो एक साथ जागनी होगी, **पौढ़े भेले जागसी भेले**, लेकिन आपको यह आभास होना चाहिए कि आपका वास्तविक स्वरूप क्या है? जब गहरी निद्रा में आप

होते हैं तो जैसे मैंने अभी कहा, आपको कुछ पता नहीं रहेगा कि मैं सरसावा में सो रहा हूँ। बस आप सो रहे हैं, उसी तरह से जो सुंदरसाथ अभी वाणी के चिंतन से दूर हैं, चितवनी से दूर हैं, वे अपने को जान नहीं सकते। सामान्य ज्ञान से बस इतना पता है कि हम परमधाम से आए हैं लेकिन यह पता नहीं रह सकता कि राज जी हमारी सेहेरग से नजदीक हैं। यह पता नहीं रह सकता कि मेरा श्रृंगार क्या है? जैसे हमारे बीच में सुंदरसाथ बैठे हैं, किसी का रंग सांवला है, किसी का रंग गोरा है, कोई नाटा है, कोई बूढ़ा है, कोई बच्चा है, कोई किशोर है, सभी अलग-अलग रूप रंग की अवस्था के हैं। सबसे पूछा जाए कि आपका स्वरूप क्या है, तो आप दर्पण में देखने लगेंगे कि मैं कैसा हो गया हूं? आप किसको देख रहे हैं? आप स्वाप्निक तन को देख रहे हैं। आपका सूक्ष्म शरीर अलग है, कारण शरीर अलग है, आपकी चेतना का स्वरूप अलग है और उसके ऊपर आत्मा, परात्म का प्रतिबिंब लेकर बैठी है।

परात्म के प्रतिबिंब को कैसे समझें, इसको इस दृष्टांत से समझिए। पीपल का बीज कितना छोटा होता है, यदि मैं कहूँ कि पीपल के इस छोटे से बीज में जो सरसों से भी छोटा होता है, उसके अंदर एक बहुत बड़े पीपल के वृक्ष की डालियां हैं, फल हैं, फूल हैं तो आप क्या कहेंगे कि पागलपन है, एक छोटे से बीज के अंदर इतने बड़े वृक्ष का आकार कैसे हो सकता है? अवश्य हो सकता है लेकिन वह कारण रूप में है। बीज के अंदर सूक्ष्म रूप से वृक्ष विद्यमान होता है।

उसी तरह से जो परात्म है, परात्म का संपूर्ण श्रृंगार आत्मा के रूप में आता है। जैसे स्वप्न देखते समय आपका शरीर (मूल तन) तो यहीं रह जाता है। आपके मन का जो संकल्प होता है, वह संकल्प मन की शक्ति के माध्यम से दूसरे शरीर की रचना करता है और उसमें चित्त के संस्कारों के अनुसार वैसा व्यवहार करने लगता है, बस ये कहानी है। जो जागृति में करते थे वह सारी क्रिया निद्रा में होने लगे तो उसको कहते हैं सपना।

यह संसार क्या है? आदिनायण का सपना। आपका तन किसको देख रहा है? स्वप्न को देख रहा है। सपने को स्वप्न का तन देख रहा है, दृष्टा है आत्मा, जो जीव पर बैठकर जीव भाव को प्राप्त हो गई है और जीव सपने के तन को पाकर, सपने के भाव को प्राप्त हो गया है। अब प्रश्न यह है कि हमें अपना निज स्वरूप कैसे दिखाई दे, निज स्वरूप को देखने के लिए आवश्यक क्या है? जिसने इस खेल को बनाया है केवल उसको देखना प्रारंभ कीजिए तो वहदत के सिद्धांत से क्या होगा? राज जी के जिस जिस अंग की शोभा को आप देखेंगे आपका भी वह वह अंग खड़ा होता जाएगा। इसलिए कहा है, **त्यों सोभा सहित आतमा, उठ खड़ी हुई बराबर।** आपकी आत्मा की शोभा क्या है, आत्मा का श्रृंगार क्या है? आत्मा का स्वरूप वही है जो परात्म का स्वरूप है। आप कह सकते हैं कि परात्म तो आई नहीं।

कंकरी एक अर्स की, उड़ावे चौदे तबक़।

मैं आपको एक घटनाक्रम से इस सत्य को समझाने का प्रयास करूंगा, बीतक में एक चौपाई

आती है – यह विचार करते, श्री देवचन्द्र जी बैठे दिल पर। हब्से में मिहिरराज की अवस्था विरह की जब होती है, पराकाष्ठा तक उनका विरह पहुँचता है तो क्या होता है? दिल बैठे सुंदर रूप अनूप। उनके धाम हृदय में कौन विराजमान हो जाते हैं? युगल स्वरूप विराजमान होते हैं। पहले युगल स्वरूप कहाँ थे? श्री देवचन्द्र जी के तन में। श्यामा जी की आत्मा भी है और राज जी का आवेश भी है। आवेश कोई वस्तु नहीं है। हमारे समाज के एक विद्वान ने कहा था कि कबीर जी के अंदर, नानक देव जी के अंदर भी राज जी का आवेश आया था, थोड़ा सा आया था तो भाई, कोई पैमाना तो मुझे नहीं लगता कि सृष्टि में कोई ऐसा हो जो आवेश की भी मात्रा बता दे कि नानक देव जी के अंदर राज जी का थोड़ा सा आवेश आया था। मिहिरराज के अंदर कुछ ज्यादा आ गया था तो इसका अर्थ क्या हम सिद्ध करना चाहते हैं कि नानक जी भी राज जी के स्वरूप हैं, कबीर जी भी राज जी के स्वरूप हैं और सबने ब्रह्म वाणी की तरह ही ग्रंथ लिखा। यह विकृत मानसिकता की देन है, संसार में कोई गणितज्ञ नहीं, कोई वैज्ञानिक नहीं जो आवेश की सूक्ष्मता को नाप सके। जो मन स्वप्न में, अपने नए शरीर की रचना कर लेता है, योगी अपने चित्त के द्वारा नए चित्त का निर्माण कर लेता है, एक साथ अनेक तन धारण कर लेता है, इस सूक्ष्म रहस्य को जानने वाला सृष्टि में न कोई वैज्ञानिक पैदा हुआ है, न कभी होने वाला है। यह मन की संरचना का जो खेल है केवल योगी जानता है या केवल परमात्मा जानता है। इसलिए तो कहा है –

श्री महामत मन को सोई देखे, जिन दृष्टे खुद खसम, मन की पहचान कौन करेगा? जो राज जी को जानता है, केवल वही मन की वास्तविकता को जानता है। परात्म त्रिगुणातीत स्वरूप है और उस त्रिगुणातीत स्वरूप का प्रतिबिंब आत्मा कैसी होगी? जो चित्त में संस्कार होगा। हम प्रतिबिंब का अर्थ क्या लेते हैं? जैसे दर्पण में हम ख़ुद देखें तो हमारा चेहरा दिखने लगता है, केवल इसी को ही प्रतिबिंब नहीं, ज्ञान दृष्टि से जो हमारे अंदर एक प्रतिबिंब खड़ा हो जाता है हमारे मानस पटल पर, उसको भी प्रतिबिंब कहते हैं।

जैसे आपका कोई सगा संबंधी दुर्घटनाग्रस्त हो गया, वो हॉस्पिटल में है। आप अपने कक्ष में पलंग पर सो रहे होते हैं, आपको उसकी याद आती है कि मेरा भाई, मेरा मित्र, हॉस्पिटल में है तो नख से शिख तक आपके मित्र की आकृति आपके मनःपटल पर अंकित हो जाएगी। जैसे दर्पण में देखते थे वैसी ही आकृति, जैसा आपने आदम कद दर्पण में अपने भाई/मित्र को देखा था, वैसा ही प्रतिबिंब आपके मस्तिष्क में भी दिखेगा, मन में भी दिखेगा, चित्त में भी दिखेगा। मस्तिष्क की क्रिया शक्ति बहुत सूक्ष्म होती है, मन भी बहुत सूक्ष्म होता है लेकिन इस मन में जैसे आकाश में चंद्रमा उगा हुआ है, सूर्य उगा हुआ है, आँखें बंद करके चंद्रमा का ध्यान कीजिए, सूर्य का ध्यान कीजिए, तो वो वैसे ही दिखाई देंगे।

आत्मा इस मायावी जगत में संकल्प मात्र से खेल को देखती है क्योंकि उसकी इच्छा है माया के खेल को देखने की तो वह क्या करती है? परात्म का प्रतिबिंब लेकर हमारी जो आत्मा है वो जीव

के ऊपर बैठकर जीव भाव को प्राप्त हो जाती है। अब हमें जागृत होने के लिए क्या करना है? मैंने अभी थोड़ी देर पहले ये बात कही कि जिसने हमको नींद में डाला है, उस जागृत स्वरूप का आप ध्यान कीजिए। जागृत स्वरूप कौन है? परमधाम में केवल श्रीराज जी। श्रीराज जी के नख से शिख तक की शोभा को आप हृदय में बसाना प्रारंभ करेंगे तो क्या है? जो राज जी का दिल है, वही श्यामा जी का दिल है, वही सखियों का दिल है। राज जी, श्यामा जी और सखियाँ, तीनों का दिल एक ही है।

अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछू नाहें।

अर्स तन - परात्म। अर्स तन दिल में ए दिल, हमारी आत्मा का दिल क्या है? परात्म के दिल में है अर्थात परात्म के दिल का प्रतिबिंब ही हमारी आत्मा का दिल है। परात्म के दिल के संकल्प से हमारी आत्मा का एक स्वरूप खड़ा होता है, जिसमें परात्म का दिल प्रतिबिंबित होता है। जैसे आप का किसी से झगड़ा हो गया, सोने से पहले, उसकी याद में आप सो गए, तो सपने में भी उसको देखेंगे और सपने में भी झगड़ा करते हुए आप स्वयं को देखेंगे। उसी तरह से ब्रह्मात्मा ने, माया के जिस खेल को देखने की इच्छा की है, वो अपनी परात्म का श्रृंगार लेकर, आत्मा के रूप में, जीव पर बैठकर खेल को देखती है। ये है निद्रा का रहस्य, खेल में आने का रहस्य।

अब वो जागेगी कैसे? जब इस जगत को भूल जाए, तभी तो वो जागृत कहलाएगी। मैंने आपको दृष्टांत देकर समझा दिया कि यदि आप सरसावा में सो गए हैं और दिल्ली में आप अपने को देख रहे हैं तो जब सरसावा में सोए हुए तन की आँखें खुलेंगी, तब ही कोई कहेगा कि हाँ अब यह जाग गए हैं। यदि आपकी आँखें बंद है और बड़बड़ा रहे हैं, आपको किसी ने चांटा मारा तो आप भी बड़बड़ा रहे हैं कि मैं मारूंगा, आप हाथ-पैर फेंकने लगते हैं तो देखने वाला क्या कहेगा ? यह व्यक्ति निद्रा में बड़बड़ा रहा है, बस यही कहानी है।

हम जो इस माया के संसार में कुछ वाणी पढ़ लेते हैं, तो जागृत समझ लेते हैं, कुछ चर्चनी याद कर लेते हैं तो भी हम समझ लेते हैं कि हमने परमधाम को देख लिया, नहीं ऐसा नहीं।

यह बड़बड़ाने जैसा है क्योंकि निद्रा में तो हम स्वयं हैं। वास्तविक निद्रा कब हटेगी? जैसे मैंने कहा, एक विशेष अवस्था आती है योगियों की, केवल योगियों के पास वो सामर्थ्य होती है कि उनको यह आभास रहता है कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ, जो योग निद्रा का आश्रय लेते हैं। यह बात बुद्धि से समझ में नहीं आएगी।

आप सुंदरसाथ सोचेंगे कि राजन स्वामी कल्पना करके कह लेते हैं लेकिन हां, यदि आप आसन सिद्धि कर लेते हैं, आसनस्थ होकर आप अपने शरीर को भूलने की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं, आप शरीर को भूल जाते हैं, शरीर का आभास नहीं रहता है, आप 4 घंटे, 5 घंटे लगातार बैठे रह जाते हैं तो आपका स्वप्न सामान्य व्यक्ति के स्वप्न से अलग होगा। गहरी निद्रा में जो सोया रहता है उसके सपने से आपका सपना कुछ अलग रहेगा। आप स्वप्न भी देखेंगे तो स्वप्न जैसा नहीं लगेगा

क्योंकि आपने निद्रा को उस समय जीत लिया होता है। आपकी निद्रा योग निद्रा होती है।
योग निद्रा में एक गहरी निद्रा में स्वप्न देखने की तरह से अलग स्थिति होती है। ध्यान में जो लक्ष्य होता है वो भी दिखेगा, आपको अपने मूल तन का भी आभास होगा कि मेरा यह तन है और मैं स्वप्न में वहाँ पहुँचा हूँ, वहाँ देख रहा हूँ। स्वप्न में भी आप अपने तन को देखेंगे और स्वप्न में ही आप अपने मूल तन की भी झलक पा लेंगे, बस यही कहानी है इस माया के खेल में जागृत होने की। पूरी आँख जब खुलेगी, तब आप पूर्ण रूप से जागृत कहे जाएंगे लेकिन जब सपना देखते हुए भी आपको अपने मूल तन की झलक मिल जाती है, तो आप क्या होते हैं? आप सामान्य व्यक्तियों के स्वप्न से अलग होते हैं, यही कहानी है। परमधाम की तो सभी ब्रह्मसृष्टि हैं लेकिन जो ब्रह्ममुनि होते हैं, चितवनी में डूबते-डूबते अपने हृदय में राज जी की शोभा को इतना बसा लेते हैं, उनके लिए लगता है कि हम संसार में आए ही नहीं।
इतहीं बैठे घर जागे धाम का अर्थ क्या है? यहीं बैठे-बैठे परमधाम में जागृत होना। जब हमारी सुरता इस खेल में है तो परात्म में तो हम जागृत हो नहीं सकते, हम अपनी आत्मिक दृष्टि से अपनी परात्म को देख सकते हैं, आत्मिक दृष्टि से राज जी को देख सकते हैं और इस अवस्था तक पहुँचने के लिए क्या करना होगा? नख से शिख तक राज जी की शोभा को बसाना पड़ेगा और उसमें बुद्धि का कोई प्रयोग नहीं होना चाहिए। चितवनी में आप किसी चौपाई का चिंतन मत कीजिए, राजश्यामा राजश्यामा जप भी वहाँ नहीं चलेगा, तारतम का पाठ भी नहीं चलेगा। जब आप ऐसी अवस्था में रहेंगे कि शरीर का कोई पता न हो, आप परात्म के श्रृंगार में चितवनी करना प्रारंभ कीजिए, परात्म के भाव में ही रहिए, जो मूल स्वरूप हैं अपने, ये चौपाई तो सबको याद होगी।

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।
सो परआतम लेय के, विलसिए संग खसम।।41।।
सागर प्र.7

परात्म को साथ लेकर अर्थात परात्म के श्रृंगार में सजकर, आप चितवनी में स्वयं को भुला दीजिए। मेरा यह नाम है, मेरा यह रूप है, आप भावना कीजिए कि मैं परमधाम की आत्मा हूं, मेरी परात्म का श्रृंगार वही है जो श्यामा जी का श्रृंगार है। अब उस श्रृंगार में भावित होकर, आप कालमाया, योगमाया को पार कर मूल मिलावे में पहुँचते हैं और राज जी की शोभा को देखने लगते हैं।
पहले यह भावात्मक रूप से करते हैं, सुंदरसाथ समझते हैं कि कल्पना है, कल्पना नहीं है। कल्पना उसको कहते हैं जो यथार्थ में न हो लेकिन महामति जी की आत्मा में राज जी ने अपने नख से शिख तक का वर्णन स्वयं आवेश स्वरूप से करवाया है, इसलिए राज जी ने जो वाणी में

कहा है उसको अक्षरशः सत्य मानना चाहिए लेकिन यह मत समझिए कि हर शब्द का अक्षरशः अर्थ ऐसा नहीं लेना चाहिए कि पाग का वर्णन लाल रंग का है कि सिंदुरिया रंग का तो वैसे ही है। पाग होत कई कोट पल में, करोड़ों श्रृंगार बदल जाएंगे। मुकुट का श्रृंगार, एक पल में करोड़ों रूप धारण कर लेगा। राज जी के वस्त्र, आभूषण करोड़ों रूप रंग में दिखाई देंगे। यह जो हमें रटाया जाता है, सिंदूरिया रंग की साड़ी, श्याम रंग जड़ाव की कंचुकी, नीली लाही को चरनिया, सिंदूरिया रंग की पाग, केसरिया रंग की इजार, श्वेत रंग को जामा, यह महामति जी को आवेश स्वरूप ने केवल दिखाया है कि सुंदरसाथ एक रास्ते पर चल पड़े। यदि ऐसा न दिखाया जाए तो कोई राज जी को कोट पैंट भी पहना सकता है, टाई भी बंधवा सकता है, हर कोई अपने मन में कल्पना कर लेगा। इसलिए एक निर्देश दिया गया है कि जैसा कहा गया है बस उसी भाव में डूबिए क्योंकि राज जी श्यामा जी के सारे श्रृंगार जो वर्णित किए गए हैं वह राजस्थान और गुजरात में चलते हैं। पंजाब में वो आभूषण बहुत कम चलते हैं, तो राज जी गुजराती नहीं है और न राजस्थानी हैं। राज जी तो अनंत ब्रह्मांडों से भी परे हैं, वहां मनुष्य की बुद्धि नहीं पहुँच सकती। हमें तो केवल एक आधार बता दिया गया है कि उस रास्ते पर चलें क्योंकि मिहिरराज का जीव जिन संस्कारों में पला है, वैसे ही भावना करेगा और उसी भावना के अनुसार राज जी अपना स्वरूप दिखाएंगे।

जैसे देखिए कितना विवाद है, कोई कहेगा कि तीन हारें हैं, कोई कहेगा कि नहीं हारें हैं ही नहीं, क्योंकि आवे ना निकसे इतथें, बीच हाथ न अंगुरी माग। जब अंगुली घुसाने की जगह नहीं है, चलने-फिरने की जगह नहीं है, तब तीन हारें कैसे बन सकती हैं क्योंकि हारों के बीच में गैप आया है तो **आवे ना निकसे इतथें, बीच हाथ न अंगुरी माग**, ये स्थिति नहीं हो सकती। परमधाम या परमधाम की लीला को माया के संसार के किसी भी बंधन में नहीं बांधा जा सकता। अक्षरातीत प्रेम के अतिरिक्त किसी भी नियम के बंधन में बंधने वाले नहीं है। जब हम अपने को जागृत करने का प्रयास करते हैं तो जो पुराने रीति-रिवाज हमको सिखाए गए हैं, एक विद्वान ने बहुत समय पहले, जब मैं पन्ना जी में साधना कर रहा था तो कहने लगे कि देखो राजन स्वामी आप क्या करते हो? मैंने कहा कि मैं चितवनी करता हूं, कहने लगे कि तुम बेकार में ही चितवनी करते हो इससे कुछ नहीं होगा। तारतम महामंत्र का इतना जप करो तो इससे आत्मा जागृत हो जाएगी। वयोवृद्ध विद्वान थे, इस समय दुनिया में नहीं है। मुझे हंसी बहुत आई लेकिन मैंने कुछ बोला नहीं क्योंकि उनकी उम्र अधिक थी और उनकी मर्यादा का ख्याल रखना था। उनको चितवनी नहीं मालूम थी लेकिन वह अपनी माला जप की प्रक्रिया को थोपना चाह रहे थे। उनको क्या लगता है कि माला का जप करने से आत्मा जागृत हो जाएगी। जप किससे होगा? वाणी से होगा। कौन जप कर रहा है? जीव जप कर रहा है। किसके द्वारा? मन का योग है, बुद्धि का योग है और जिह्वा का योग है, जीव का इससे कोई लेना देना नहीं। जो उपासना शरीर और इंद्रियों के आधार पर होती है उससे परमात्मा की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। हाँ, यदि आप ऐसा जप करें कि जिह्वा न हिले, होंठ

न हिलें और जब आपके संस्कार पवित्र हों तो आप शरीर के आभास होने से परे हो जाएँ तो इतना लाभ अवश्य होगा कि आप ध्यान मार्ग के राही बन सकते हैं तो राजजी की कृपा से हो सकता है कि आपको कुछ झलक मिल जांए। जैसे हरिदास जी को हुआ था, हरिदास जी ने सोचा कि मैं देवचंद्र जी को मूर्ति तो दे नहीं सका, देवचंद्र जी मन में संशय कर रहे होंगे कि मैंने जानबूझकर मूर्ति को छिपा दिया है और इसी दुख में वो बैठे रह गए। बीतक में चौपाई आती है, आंख मीची कि ना मीची, बैठे-बैठे। लेटे नहीं है, बैठे हैं, बैठे-बैठे झपकी लगती है। झपकी लगने में क्या होता है? मन का संबंध संसार से हट जाता है। यदि वह लेटे होते, तो उनके अंदर तमोगुण का प्रवाह ज्यादा होता, गहरी निद्रा हो जाती लेकिन जैसे झपकी आती है, तो सपने में नहीं देखा। स्वप्न में देखा हुआ सच नहीं होता क्योंकि मन के संकल्पों के आधार पर स्वप्न होता है। कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं जो राज जी की कृपा से दर्शाए जाते हैं। सुंदरसाथ को उसको अंतिम लक्ष्य नहीं मान लेना चाहिए लेकिन स्वप्न से और समाधि से भिन्न एक ऐसी अवस्था आती है, जिसको न निद्रा कह सकते हैं, न सपना कह सकते हैं, न ध्यान समाधि कह सकते हैं लेकिन ध्यान समाधि और सपने का वो औसत होता है और उसमें लगता है कि मैं बैठा भी हूं, पता रहेगा कि मैं बैठा भी हूं, यह भी पता रहेगा कि मैं साक्षात् देख रहा हूं जो समाधि में देखा जाता है लेकिन वह समाधि का प्रयास किया नहीं गया होता है। ये राज जी की विशेष कृपा से ऐसा हो सकता है और ऐसी ही प्रक्रिया हरिदास जी के साथ हुई और उसी में उन्होंने बालमुकुंद जी का दर्शन किया। बालमुकुंद जी ने निर्देश दिया तो उन्होंने उसका पालन किया। यह किसकी कृपा से हुआ? बालमुकुंद जी की कृपा से हुआ। यदि ऐसा नहीं होता तो हजार सालों में भी हरिदास जी को बालमुकुंद के दर्शन नहीं होने थे।

मेहेर इलम जोस हुकमें, हक देखिए बेसक। राज जी की मेहर हो, प्रेम का जोश हो, मेहर, जोश, इलम, तारतम वाणी का मारिफ़त का ज्ञान हो और सबसे बड़ी चीज राज जी का हुक्म। हुक्म का अर्थ श्रीराज जी के दिल की इच्छा इसलिए सेवा पूजा में क्या कहा है? जब तुम आप दिखाओगे तब देखूंगी नैन भर जी। राज जी जब आप दिखाओगे तब मैं देख लूंगी, कोई उलाहना नहीं, कोई गिले शिकवे नहीं, हृदय जब समर्पित हो गया तो आपकी जो इच्छा। दीदार देते हो तो आपकी कृपा, नहीं देते हो तो जो आपको करना हो करो, ज्यों जानो त्यों रखो धनी तुम्हारी मैं।

संसार में हम क्या करते हैं, किसी से कोई काम करवाना है तो जिद करके, बार-बार जोर देकर कहने लगते हैं, चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि आप क्यों नहीं कर रहे हैं, क्यों नहीं कर रहे हैं, इससे कुछ नहीं होता। संसार में किसी पर दबाव देकर कोई बात कुछ समय के लिए करवा सकते हैं लेकिन वह अक्षरातीत हैं, उन पर दबाव किसका हो सकता है? समर्पण का केवल हो सकता है। यदि आपने अपना हृदय दे दिया,व्यापार करना बंद कर दिया, व्यापार क्या है? कुछ भी करना तो तुरंत हिसाब करने लगना। पाठ रखते हैं, तुरंत हिसाब करते हैं। दो चार दिन आँखें मूँदी, फिर हिसाब करने लगते हैं कि हमको तो राज जी दिखे नहीं, यह तो झूठ है, हमारे मन में संशय खड़े हो जाते हैं।

आपका हृदय राज जी के प्रेम में इतना डूब जाए कि आप स्वयं को भूल जाया कीजिए कि मेरा शरीर है, मैं यह हूँ, आपको केवल अपनी परात्म का श्रृंगार दिखता रहे। आप देखिए, अपने प्राणेश्वर को अखंड दृष्टि से देखिए, पलक न पीछे फेरिए, ज्यों इस्क अंग उपजत। एक पल के लिए भी अपनी नजर नहीं हटाइए मूल मिलावे से और युगल स्वरूप से, प्रयास करना आपका कर्तव्य है लेकिन राज जी को दोष लगाना, एक बहुत बड़ा गुनाह हो जाता है।
दोष कौन लगाएगा? जो समर्पण में कच्चा होगा, प्रेम में कच्चा होगा, वही तो अपने प्रेमास्पद पर दोष लगाएगा। यदि हमारा समर्पण इस स्तर तक पहुंच गया कि एक ही आवाज निकलती है, **ज्यों जानों त्यों रखो, धनी तुम्हारी मैं।** मैं केवल आपकी हूँ।

जानो तो राजी रखो, जानो तो दलगीर।
या पाक करो हादीपना, या बैठाओ माहें तकसीर।।38।।
खिलवत प्र.4

आपकी जो इच्छा हो, आप मुझे खुश रखो या दुखी रखो या मुझे पवित्र करके अपना स्वरूप बना लो, हादी बना लो, सब सुंदरसाथ में मुझे राज जी के रूप में प्रचारित करो या गुनाहगारों की पंक्ति में खड़ा कर दो, मुझे आपसे कुछ गिले शिकवे नहीं करना है क्योंकि मैं हूँ ही नहीं, केवल आप हो। यदि हम इस अवस्था में पहुँच जाते हैं तो जानते हैं क्या होता है? अक्षरातीत की भी सामर्थ्य नहीं होती है कि वो दीदार न दें लेकिन हमसे यही नहीं होता। हम समर्पण में तो पीछे रहते हैं, संसार के भक्तों की तरह हमारी सारी दिनचर्या चल रही होती है क्योंकि सबने सीखा होता है कि हनुमान जी के इतने मंत्र करने पर सिद्धि मिल जाती है, देवी के इतने मंत्र का जप करने पर यह मिल जाता है, तो वही हिसाब किताब, बनिया की तरह, हम लेकर के बैठ जाते हैं। प्रेम में व्यापार नहीं चलता, प्रेम में केवल लुटाना होता है, अपना हृदय लुटाना होता है और वह अक्षरातीत है जो कहता है, मेरी तरफ चल करके आओगे तो मैं दौड़ करके आऊंगा और तुम दौड़ोगे तो तुम्हारे एक कदम रखने से पहले मैं तुम्हारे हृदय में प्रकट हो जाऊंगा। ऐसा वो अक्षरातीत है। तभी तो कहते हैं-

मैं लिख्या है तुम को, जो एक करो मोहे साद।
तो दस बेर मैं जी जी कहूं, कर कर तुमें याद।।23।।
सिनगार प्र.29

तुम एक बार पुकारो मैं 10 बार पुकारने के लिए तैयार हूँ, ऐसे अक्षरातीत से आप प्रेम करते हैं लेकिन मन में व्यापार की भावना रखते हैं तो प्रेम व्यापार का विषय नहीं है। प्रेम लुटाने का विषय

है, जो स्वयं को लुटा देगा, वह राज जी को लूट लेगा। राज जी को लूटने का तात्पर्य उनके हृदय पर उसका अधिकार होगा क्योंकि वाणी कहती है – जब चढ़े प्रेम के रस, तब हुए धाम धनी बस। वही प्रक्रिया है। जैसे-जैसे आप राज जी को दिल में बसाते जाते हैं, जिस-जिस अंग की शोभा को देखते हैं, जो देखे हक नैन को, तो खुले रूह के नैन।

जब पूरन सरूप हक का, आए बैठा माहें दिल।
तब सोई अंग आतम के, उठ खड़े सब मिल।।70।।
सिनगार प्र.4

मैंने आपको स्वप्न के दृष्टांत से समझाया कि माया के संसार में जागृति कैसे होती है और जैसे-जैसे आप ध्यान के अभ्यासी हो जाते हैं, जैसे मैंने हरिदास जी का दृष्टांत दिया, जब तक वह सोच रहे थे कि देवचन्द्र जी क्या सोचेंगे? मैं दे नहीं पाया। द्वंद चल रहा है उनके अंदर, तो यह क्या है? विचार और वितर्क। इसके परे जब अवस्था आ गई, जब निद्रा आ गई, झपकी लगी, झपकी लगने का परिणाम क्या होगा? उनके मन ने कार्य करना बंद कर दिया, निद्रा में तमोगुण के द्वारा और क्योंकि बैठे हैं, तो गहरी निद्रा आ नहीं सकती, मन को शरीर से अलग कर दिया, अंदर में पवित्र भावना है कि मैं देवचंद्र जी को दे नहीं पाया तो इसी शुभ भावना ने और सबसे बड़ी चीज बालमुकुंद जी की कृपा, जिसके कारण उनके मन के जितने विकार थे कुछ समय के लिए छूमंतर हो जाते हैं और बालमुकुंद जी के संकल्प से, इसको कहते हैं मेहर।
इलम, जोश, हुक्म और मेहर तो इसीलिए कठोपनिषद् में कहा है-
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥
परमात्मा ही जिसका वरण करता है वही उसको प्राप्त होता है। अब राज जी के हृदय में भी यह इच्छा पैदा होनी चाहिए कि अब आपको दर्शन हों। उसके लिए क्या करना पड़ेगा? आपको अपना हृदय लुटा देना पड़ेगा राज जी के लिए। हमारा पहला प्रेम राज जी के लिए, हमारा सर्वस्व समर्पण राज जी के लिए, अटूट समर्पण, अटूट विश्वास, अटूट प्रेम, यही राज जी के दीदार का साधन है और किसी भी स्थिति में राज जी में दोष न देखना। जहाँ प्रेम होता है, प्रेमास्पद में दोष नहीं देखा जाता है, अपने में दोष देखा जाता है।
संसार में झगड़े क्यों होते हैं? भाई-भाई में झगड़े, पति-पत्नी में झगड़े, मां-बेटे में झगड़े क्योंकि दोनों अपना दोष नहीं देखते, दूसरे का दोष देखते हैं और कहते हैं कि मैं ठीक हूं, तुम ग़लत हो तो यहां से संघर्ष खड़ा हो जाता है। यदि आप स्वयं को दोषी मानें, अपने प्रेमास्मद को दोषी न मानें, तो प्रेम का धागा हमेशा के लिए अखंड बना रहता है लेकिन संसार में ऐसा नहीं हो सकता। इसी कारण संसार में रिश्ते बनते बिगड़ते रहते हैं लेकिन जो प्रेम का संबंध है वह अखंड रहता है। हमारा

जीव माया का है, इसलिए हर बात में राज जी को दोष देने लगता है। आप समझिए कि कहीं न कहीं हमारे समर्पण में कमी होती है, हमारे विश्वास में कमी होती है, हमारे प्रेम में कमी होती है। राज जी कहीं दूर थोड़े बैठे हैं, जिसको कहा गया सेहेरग से नजदीक, वो हमारे प्राण की नली से भी निकट हैं। उस अक्षरातीत के दर्शन के लिए उड़कर के जाना नहीं होता है, उनसे निकट कोई नहीं है। वे इतने निकट हैं कि इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, हिग्स, बोसॉन भी उससे अधिक निकट नहीं हो सकते लेकिन यदि हमारी दृष्टि कहीं और है, संसार को देख रही है, तो उनसे अधिक कोई दूर भी नहीं है। समस्त सृष्टि में कोई ऐसा नहीं हुआ जो अक्षरातीत को देख सके, केवल ब्रह्मात्माओं के अतिरिक्त या अक्षर की आत्मा जब बसरी सूरत के रूप में आई थी उसके पहले आज तक किसी ने भी अक्षरातीत का दीदार नहीं किया था और इस जागनी के ब्रह्मांड में सीधे कहा गया कि ल्यायो प्यार करो दीदार।

एक प्रेम है जो आपको संसार से अलग कर देगा तो यह सारी स्थितियां अनायास ही बन गयीं। यही स्थिति भैरव सेठ के साथ होती है। भैरव सेठ में क्या है? श्री जी का वरद हस्त है, श्री जी के हृदय में संकल्प उठता है कि इसको कुछ अनुभव कराना है और भैरव सेठ जो शराबी है, कबाबी है, सारे बुरे विचारों से घिरा है। श्री जी के प्रति जब श्रद्धा प्रकट करता है तो उस श्रद्धा के प्रभाव से उसके विकार छूमंतर हो जाते हैं जब वो चर्चा सुन रहा होता है। जब बुरा व्यक्ति अच्छाई की तरफ चलता है, तो सच्चे मन से चलता है, वो अपनी बुराइयों को चूँकि प्रकट कर चुका होता है, वो जानता है कि मैंने इतने पाप किए हैं तो परिणाम क्या होता है? शुद्ध हृदय से वो श्रवण करता है। भैरव सेठ अपनी हृदय की शुद्धता, हृदय उसका कालिमा से भरा था, मांस, शराब, पर स्त्री गमन, सारे पाप उसने किए थे लेकिन परमधाम की ब्रह्मात्मा है, श्री जी पर विश्वास करते हैं। भैरव सेठ तो पूरे दिल से करते हैं और उनके निर्देश के अनुसार श्री जी के मुखारविंद की जब चर्चा सुन रहे होते हैं तो मन एकाग्र हो जाता है और श्री जी की कृपा का अमृत छलकता है और इन नैनों से बैठे-बैठे भैरव सेठ को साक्षात् दर्शन हो जाते हैं, जो सुंदरसाथ को लंबी-लंबी चितवनी में भी दर्शन नहीं होते। चितवनी में भी यही करना होता है, शरीर को इतना स्थिर कर दीजिए कि आपको शरीर का आभास न रहे। पुनः राज जी के प्रेम में इतना डूबिए कि आपके मन को पता ही न हो कि कुछ सोचा विचारा भी जा सकता है। भैरव सेठ की जो अवस्था हुई या जो अभी इसके पहले मैंने जो बताया हरिदास जी की जो अवस्था हुई तो पल भर में इनको दर्शन हुआ। इसी को तो कहते हैं, प्रेम पहुंचावे मिने पलक।

यह तो गति है अटपटी, चटपट लखे ना कोए।
जो मन की खटपट मिटे, तो झटपट दर्शन होए।।

भैरव सेठ की खटपट अपने तरीके से मिटी, हरिदास जी की खटपट अपने तरीके से मिटी, आपकी भी खटपट मिट सकती है। इसलिए मैंने तीन सूत्र बताए हैं राज जी की कृपा की छत्रछाया में - पहला सूत्र है, शरीर को इतना स्थिर कीजिए कि आपको शरीर का पता ही न हो। उसके बाद मन

को इतना सात्विक कीजिए कि मन राज जी के प्रति समर्पित हो जाए। जिस शोभा को देख रहे हैं केवल शोभा का लक्ष्य रहे, मन के तर्क वितर्क समाप्त कीजिए। हृदय में इतना विशुद्ध प्रेम लाइए, आपका हृदय इतना शुद्ध हो कि जैसे हाथ पर आंवला रखकर किसी को सौंप दिया जाता है वैसे ही अपना हृदय अपनी हथेली पर रखकर राज जी को दे दीजिए। राज जी यह मेरा हृदय है जो करना हो कीजिए।

धनी मैं तो तुम्हारी कीयल, मैं केवल आपकी हूं। जब यही स्थिति बन जाएगी तो जो काम बरसों का है, कुछ महीनों का भी नहीं रहेगा, कुछ घंटों का भी नहीं रहेगा, पाव पलक में जगे।

ज्यों सूरत दिल देखत, त्यों रूह जो देखे सूरत।

सिनगार की चौपाई है, उस अवस्था में जब आत्मा की अवस्था आ जाती है तो क्या कहा गया कि पाव पल में जगे, एक पल के चौथाई हिस्से में आत्मा जागृत हो जाती है अन्यथा नहीं होगी। हम सोचते हैं कि पाठ कर लेंगे, पूजा कर लेंगे, परिक्रमा कर लेंगे, इससे आत्मा जागृत नहीं होगी। हां, आपको चितवनी के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा मिलेगी।

जैसे आपको आई.ए.एस बनना है तो पहले स्नातक होना पड़ेगा, उसके बाद जो उसकी प्रतियोगिताएँ होती है उनको उत्तीर्ण करना पड़ेगा।आप इसके लिए पहले प्राथमिक कक्षा में जाएंगे प्राइमरी में, उसके बाद माध्यमिक, मिडिल स्कूल में जाएंगे, फिर इंटर में जाएंगे, उत्तर मध्यमा और तब कॉलेज, महाविद्यालय में स्नातक की परीक्षा पास करनी पड़ेगी, ये अलग-अलग स्थितियां है। भाव बनाने के लिए सबका महत्व है, छोटे बच्चे से जप भी करवा लीजिए, पूजा भी करवा लीजिए लेकिन इसी को 70 साल की अवस्था में भी दोहराते रहेंगे, तो क्या कहेंगे? इसको समय और ऊर्जा का अपव्यय ही कह सकते हैं। इनसे कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है,

इस्क बंदगी अल्लाह की, सो होत है हजूर।
फरज बंदगी जाहेरी, सो लिखी हक से दूर।।58।।
खुलासा प्र.10

यह दूरी बनी रहेगी, दीदार नहीं होगा, माया की निद्रा हट नहीं सकती तो हम दोष राज जी को देने लगते हैं कि राज जी को याद तो करते हैं। याद किससे कर रहे हैं? आप मन से याद कर रहे हैं, मन से तो प्राप्त हो ही नहीं सकता। जो मन से परे है, बुद्धि से परे है, उसको मन बुद्धि से प्राप्त करना होता तो दुनिया बहुत पहले प्राप्त कर चुकी होती, इसलिए मन का यह खेल है। मन ही में मन उरझाना, जो मन सत, रज, तम के बंधन में, त्रिगुणात्मक स्वयं है, लाखों जन्मों से तृष्णाओं के भोग में भटकता रहा है, इस मन को क्या कर्मकांड के धरातल पर कभी शांत किया जा सकता है? नहीं। जब तक इससे परे नहीं होंगे, जैसे कि मैंने कहा, भैरव सेठ और हरिदास जी को राज जी की

कृपा की छत्रछाया में रहने के कारण दर्शन प्राप्त हो जाता है। बालमुकुंद जी का दर्शन हरिदास जी को भी होता है और बालमुकुंद के रूप में दर्शन देवचंद्रजी को भी होता है। देवचंद्र जी को दर्शन देने वाला जो स्वरूप है वो राज जी है, राज जी बालमुकुंद जी के रूप में आते हैं। पिया किए अति प्रसन, तीन बेर दिए दरसन। हरिदास जी को जो बालमुकुंद जी का दर्शन होता है, रूप तो वही होता है लेकिन उसमें केवल बालमुकुंद जी होते हैं, उस रूप में राज जी नहीं होते हैं, इसलिए रूप के भ्रम में आपको नहीं आना चाहिए। यह सारा संसार नश्वर है। आप ध्यान करने से पहले कभी प्रलय की कल्पना कीजिए, आप ऐसी भावना लीजिए कि प्रलय हो चुका है और प्रलय में क्या है? न सूरज है न चांद है न सितारे हैं, कुछ नहीं है, घना अंधकार है। आप जब संसार के अस्तित्व को अपने मानस पटल से हटा देंगे तब समाधि में प्रवेश करने में आपको सरलता हो जाएगी। आपके साथ चित्त में लाखों जन्मों के संस्कारों का बोझ दबा हुआ है। लाखों जन्मों में आपने सारे अच्छे बुरे कर्म किए हैं, उसका बोझ लादे फिरते हैं, जब तक इनसे परे नहीं होंगे, आपकी जागृति की अवस्था कहाँ से आएगी? इसलिए कहा है -

सुपने सूरत पूरन, रूह हिरदे आई सुभान।
तब निज सूरत रूह की, उठ बैठी परवान।।69।।
सिनगार प्र.4

सुपने सूरत पूरन, स्वप्न के इस ब्रह्मांड में राज जी का पूर्ण स्वरूप, नख से शिख तक जब हृदय में बस जाता है तो क्या होता है? तब निज सूरत रूह की, उठ बैठी परवान, जब नख से शिख तक राज जी को आप अपने हृदय मंदिर (आत्मा का हृदय) में बसा लेते हैं। ये जीव के हृदय की बात नहीं है, जीव के हृदय का संबंध तब तक रहेगा जब तक मन, चित्त, बुद्धि का कार्य चलता रहेगा। जब मन, चित्त, बुद्धि की दौड़ समाप्त हो जाती है, जैसे हरिदास जी की समाप्त हुई। यहां मैंने किसी ब्रह्मात्मा का उदाहरण नहीं दिया, जो छह-छह घंटा लगातार बैठता है समाधि में, चितवनी में डूब जाता है, मैंने तो बीतक में जो आप सुनते हैं, केवल उसका दृष्टांत दिया। मैंने गोपाल मणि जी का दृष्टांत नहीं दिया, परमहंस महाराज श्री राम रतन दास जी का दृष्टांत नहीं दिया, इन परमहंसों के लिए तो 24 घंटे, 36 घंटे, 72 घंटे कुछ भी नहीं है, बैठ गए हैं तो बैठ गए हैं, कब सूरज उगा, कब डूबा कोई लेना देना नहीं है। मैंने तो पल भर के जो दर्शन हुए, हरिदास जी को या भैरव सेठ को, मैंने केवल वो वर्णन किया है ताकि सुंदरसाथ को समझ आ जाए कि मन की खटपट को मिटाना होता है और जब ऐसा कर लेते हैं, **तब निज सूरत रूह की, उठ बैठी परवान।**
राज जी के जिस अंग को देखेंगे, वहदत के सिद्धांत से आपको अपनी आत्मा का भी वही अंग दिखेगा।

मेरा समय तो पूरा होता है, मैं आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता।

आप देखिए सुंदरसाथ चितवनी की गहराइयों में जैसे-जैसे डूबते जायेंगे, यह मन बुद्धि का विषय नहीं है, आपको स्वयं राज जी बताते जाएंगे। आपके और राज जी के बीच में मैं मध्यस्थ कहाँ से बन जाऊँगा कि सारी बात मैं बता दूं, आपके राज जी हैं, आपके प्राणेश्वर हैं। आप चितवनी में डूबिए, उसके पश्चात् आप जानें आपके राज जी जानें, मैं तो केवल इधर-उधर की बात करने के लिए बैठ जाता हूँ। हर सुंदरसाथ के सेहेरग से नजदीक उसका प्राणेश्वर बसता है और मैं देश विदेश में जो भी सुंदरसाथ हैं, मैं केवल इतना ही आग्रह कर सकता हूं कि जितना अतीत में समय चला गया वो चला गया, नाहीं से तो कुछ भला, अब जो भी आपके शरीर की उम्र बची है, उसमें दृढ़ संकल्प के साथ लगिए कि हमारा प्राणेश्वर हमारे प्राण की नली से भी निकट रहता है और उसका साक्षात्कार करना मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है। किसी नकारात्मक विचार में न जाइए, आपका हृदय जिस दिन प्रेम से परिपूर्ण हो जाएगा, समर्पण की भट्ठी में तप कर कुंदन बन जाएगा, उस दिन एक पल की देर किए बिना आपके हृदय मंदिर में आपके प्रीतम की छवि बस जाएगी और इसको कहते हैं आत्मा की जागृति।

ल्याओ प्यार करो दीदार

क्यों कहूं चरन की बुजरकियां, इत नाहीं ठौर बोलन।
ए पकड़ सरूप पूरा देत हैं, मेरे जीव के एही जीवन।।

।। प्रणाम जी ।।

हमारे साथ जुड़ने के लिए धन्यवाद!
किसी भी प्रश्न के लिए कृपया श्री प्राणनाथ जी वाणी
चैनल पर अवश्य जाएँ।
श्री प्राणनाथ जी वाणी
॥ प्रेम खोल देवे सब द्वार ॥
ShriPrannathJiVani
Shri Prannath Jyanpeeth
Shri Prannath Ji Vani
Shri Prannath Jyanpeeth
Shri Prannath Ji Vani
shriprannathgyanpeeth@gmail.com
shriprannathjivani@gmail.com